" मिथ्यात्व विध्वंसक ग्रन्थमाला" पुष्प १

॥ दंडी दम्भ दर्पण ॥

अर्थात्

मंगल सिंह दंडी की प्रकाशित की हुई " माधव मुख चपेटिका " का उत्तर
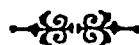
प्रकाशक

जवाहर लाल जैन

प्रथमा वृत्ति १०००] मूल्य ॥) [वीर सम्वत् २४४२

॥वन्दे वीरम्॥

उपोद्घात

सर्व सज्जनों को विदित हो कि बा. मंगलसिंह ढूंढी ने(ढूंढक हृदय नेत्रांजन के भाग २ में जो प्रतिमा मंडन स्तवन संग्रह है उस में यह कविता " शिक्षा बत्रीशी " के रुप में प्रकाशित हो चुकी है उसी में से कुछ शब्दादिकों को परिवर्तन करके)अपने नाम से "त्रिंशिका"के रूप में लोगों को भड़काने के अभिप्राय से इस छोटे से ट्रैक्ट " माधव मुख चपेटिका " को सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय दिल्ली सम्वत् १९७१ में मुद्रित करा प्रकाशित कर के इस कहावत को चरितार्थ किया है " विनाश काले विपरीत बुद्धि " अर्थात् अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारी है ॥ जिस में उन्होंने श्रीमान् १००८ श्री स्वामी माधव मुनिजी कृत कई पुस्तकों के प्रकाश पर धूल फेंक कर अन्धकार फैलाने का पूर्ण उद्योग किया है परंतु जो लोग साक्षर हैं, जिन्हों ने स्वामी जी के दर्शन करके धर्म विषयक शंका निवृत्त की है उन-

के रचे स्तवन सत्या सत्य की खोज के लिये पढे हैं और उनके उपदेशों द्वारा सनातन जैन धर्म का सत्य स्वरूप जान लियाहै व निस्संदेह प्रचलित मूर्त्ति पूजादि हिंसा के व्यवहारों को छोड़ चुके हैं ॥ लेकिन इस प्रकार के लेखों से और ट्रकटों से इस के अतिरिक्त और कुछ फल नहीं कि हम तथा दंडी जी अपने२ समय और द्रव्य को इनके प्रचार में वेर्थ व्य करै (हम नहीं चहाते थे की इस " त्रिंशिका" का उत्तर हम प्रकाशित करै क्यों कि यदि हमें यह स्वीकार होता तो इस " त्रिंशिका " का उत्तर भी हमारी समाज जव ही प्रकाशित कर देती जव कि इस को " शिक्षा वत्रीशी " के रूप में अमर विजय जी ने ढूंढक हृदय नेत्रांजन में प्रकाशित कराई थी और जिसके उत्तर में एक छोटा सा ट्रकट " अम्रभ्रमोच्छेदन " के नाम से निकल भी चुका है लेकिन वावू सहाव ने तथा इनके सहयोगी यों ने हमको मजवूर किया की तुम इस ' त्रिंशिका ' का उत्तर प्रकाशित करके हमारी ढोल की पोल को खोलो अन्यथा क्या आवशयकता थी जो इसको द्वारा प्रकाशित करा कर सर्व साधारण में प्रचार किया गया अतएव हमकोभीइस विषय पर लेखनी उठानी पड़ी) अथवा ग्रन्थ कर्त्ता एक धार्मिक महात्मा के लेखों में द्वेष भाव से वृथा दोषारोपण करके अपने आपको वुराई का भागीवना क-

मोंका वंधन करे याएकप्रसिद्ध पुरुषका प्रति द्वन्द्वि बनकर केवल हटी और अनजान मनुष्यों में नाम मात्र को प्रतिष्टा प्राप्त करले ॥ यद्यपि ऐसी२ लाघव सूचक पुस्तकें इनही की तरफ से कई बन चुकी हैं(इस पर भी बाबू सहाब यह दोषारोपण श्रीमान् माधव मुनि पर करके लिखते हैं कि " हमारा युक्त प्रान्त इस विषय (ट्रकट बाजी) में शांत था ढूंढक समाज के नेता श्री युत माधव मुनि . ने कुछ कवि-ता रचकर आगरे से प्रसिद्ध करा कर इस प्रान्त में भी ट्र-कट वाजी की शुरू आत की ॥ पाठक गण हमारे प्रति द्वन्द्वी ने पक्षपात के वशीं भूत होकर यह असमंजस लिखा हैं क्या बाबू सहाब को यह मालूम नहीं है कि श्रीमान् माधव मुनि की कविता से पहिले तो आप ही की तरफ से सम्वत् १९४८ में एक ट्रकट " ढुंढक विवाद जतिन " के नाम से निकाल चुका है फिर आप अपना दोष एक पवि-त्र महात्मा के ऊपर आरोपण कर क्यों पाक साफ बनते हो।) और सर्व साधार्ण में उनका कुछ भी मान्य नहीं हुआ ऐसी ही दशा इस " त्रिशिका ' की भी है परन्तु थोड़े से ही दुराग्राही पुरुषों के प्रयत्न से आगरा देहली, आदि देशों में इसका प्रचार हो गया है जिससे थोड़ी समझ के पुरुष भ्रम में पड़ गये हैं और हमको वार२ पत्र लिखेत है कि इसका उत्तर प्रमाणों सहित अवश्य ही प्र-

काशित होना चाहिये इस लिये हमने इस " त्रिंशिका " के उत्तर में जो कुछ भी लिखा है इसका कारण त्रिंशिका के प्रगट कर्त्ता या बनाने वाले ही है और सर्व ग्रंथों के प्रमाणों सहित ही लिखा गया है ॥

यद्यपि हमको इस बात का कोई हट या दुराग्रह नहीं हैं कि स्वामी जी कृत पुस्तकों में कोई भूल हो ही नही सक्ती क्योंकि अश्रवग होने से परन्तु जब तक यथार्थ में कोई भूल सिद्धन हो जावे तब तक मन माने अनुचित असत्य आक्षेपों का उत्तर देना आवशयक जानते हैं इस कारण " त्रिंशिका " का खंडन करते हुए भी यदि कहीं कोई सत्य आक्षेप देखेंगे तो उस पर लेखनीं नहीं उठावगे परन्तु इस " त्रिंशिका " में ऐसी आशा न्यून ही है क्योंकि ग्रन्थ कर्त्ता ने अत्यंत ही पक्षपात से काम लेकर ऐसे२कटु शब्द लिखे हैं जो दिल को दुखाने वाले हैं जिनकी झलक पुस्तक के नाम से ही सर्व साधारण को आती होगी। भला ऐसे सामान्य पुरुष की ओर से एक भूमंडल में विख्यात महात्मा के नाम " माधव मुख चपेटिका " नामक ट्रूकट का लिखा जाना और उसका ऐसा उद्दंड नाम रखना क्या थोड़े द्वेष का सूचित करता है ! परंतु बाबू सहाब ने जैन समाज में अपने विख्यात होने का यह एक अच्छा उपाय

सोचा जो एक ऐसे विद्वान (जिसको जैन के तीनों सम्प्र-दाय ने विद्वान माना है देखो "जैन प्रकाशक ' मासिक पत्र जून सन् १९०९) के विरोधी बन कर यह छोटा सा ट्रैकट प्रकाशित किया॥ बाबू सहाब ने तो अपना तुच्छ स्वारथ सिद्ध किया ही लेकिन आपके थोड़े से ही इस तुच्छ स्वार्थ का यह फल है कि फिर जैन समाज में फूट के फल पैदा होने लगे अंतमें, हम यह लिख कर ही आप से प्रार्थना करते हैं कि

विप-पूर्ण इर्ष्या, द्वेप पहले शीघ्रता से छोड़ दो,
घर फूंकने वाली फुटैली फूट का सिर फोड़ दो।
अब तो विदा दो दुर्गुणों को सद्गुणों को स्थान दो,
खोया समय यों ही बहुत अबतो उसे सम्मान दो।

॥ शांति १ शान्ति १ शान्ति १ ॥

निवेदन
जवाहर जैन

॥ श्रीमद्वीरायनमः ॥

※ मंगलाचरण ※

प्रथम मनाय गण ईश शीश नाय कर दूजें
गुरु देव जू के पद शिर नाय के !

तीजें वीतराग वानी मोक्ष की निशानी ताहि
हिरदे में ध्याय कर पर हित लाय के !!

युक्ति औ प्रमाण सत ग्रंथन की साखदेय परि-
परा वाद पाप चित्त से हटाय के !

ढूंढियों के दंभ में फसें न भव्य जीव तातैं-ढूंढी
दंभ दर्पण-रचूं हरषाय के ॥ १ ॥

* भाषा *

स्व इष्ट को प्रणाम करि के--प्रथम हम यह बतलाना आवश्यक समझते हैं कि 'दंडी' शब्द से यहां किनसे प्रयोजन-है क्योंकि 'दंडी' यह नाम संयोग ज है इस शब्द का स्पष्ट अर्थ यह होता है कि. जो दंड धारण करै सो दंडी. उक्तंच "दंडेण दंडी" इति-अनुयोग द्वार-सूत्रे:

इस से वैष्णव संप्रदाय में भी जो ऋषि नियमित दंड धारण करते हैं तिन को भी 'दंडी स्वामी' कहते हैं, परंतु उनका ग्रहण यहां नहीं. किंतु जो जैनाभास-पीत वस्त्रधारी और आकर्णान्त[कानतकलम्बा]दंडको धारण किये रहते हैं यहां तिन का ग्रहण है, सो अब उन दंडीओं की ही दंभ रचना का स्वरूप दर्पणवत् प्रदर्शित करते हैं-अर्थात् "मंगल सिंह" दंडी ने जो 'त्रिशिका' प्रकट की है (जिसमें सनातन जैनधर्म पर नितांत मिथ्याआक्षेप कियेहैं) अतएव तिस का उत्तर लिखते हैं;

प्रथम काव्य में दंडी जी ने लिखा है कि।

"कक्का-कुत्ता से भी भुड़ा ढुंढा नाम धराया है

उत्तरः- वाह दंडीजी उक्त लेख तो आपका नितान्त दंभ का भरा है,

क्योंकि ढुंढा नाम सनातन जैन साधुओं ने अपना नहिंधराया है. और तुम से मूर्खों के अति रिक्त न कोई जैन साधुओं से ढुंढा कहता है, किन्तु पुनरुद्धार के समय जैन साधुओं की क्रिया विषेश को देख कर जैनेतरों ने 'ढुण्ढि यह नाम रख लिया है, क्योंकि सनातन जैन साधु आत्म स्वरूप की तथा शुद्ध निर्दोषआहार, वस्त्र, पात्र, स्थान आदि की ढूंढना अर्थात् अन्वेषणा करते आये हैः बस इस क्रिया विशेष को देख कर जैन साधु को 'ढुण्ढि' कहने लग गये. और जैन साधुओं ने भी इस 'ढुण्ढि' नाम को गुण निष्पन्न तथा महत्व में पूरित समझा है, क्योंकि कोष कारों ने ढुण्ढि शब्द का अर्थ 'गणेश' किया है सो बहुत उत्तम है. देखो "पद्म चंद्र" कोष पृष्ठ १६४ पंक्ति ३८ मी

(ढुण्ढि. पु० ढुण्ट् + इन्। गणेश (काशी में प्रसिद्ध ढुण्ढि राज)

पुनः देखो शब्द स्तोममहानिधि" कोषपृष्ठ १७५ पंक्ति ?

ढुण्ढि ❀ पु० ढुण्ढ– इन्। गणेशे, काश्यां प्रसिद्धे ढुण्ढि राजि।

पुनः देखो ' शब्दार्थ चिंता मणि " कोश पृष्ठ १०३५ पंक्ति २५ मी से

ढुण्ढिः । पु । श्री गणेश विशेषे । यथा । अन्वेषणे ढुढि रयं प्रथितो स्ति धातुः सर्वार्थ ढुण्ढत तयाभव ढुंढिनामा । काशी प्रवेश मपिको लभते ऽत्रदेही तोषं विना तव विनायक ढुण्ढि राज ।

तथा " मुहूर्त्त चिन्ता मणि " की पृष्ठ ३ पंक्ति ५ मी में मंगला चरण की व्याख्या में--' पीयूष धारा' नाम की टीका में ऐसे लिखा है कि

ढुंढि राजः प्रियः पुत्रो भवान्याः शंकर स्यच ।

इस प्रकार अनेक कोष तथा ग्रंथ कर्त्ताओं ने ' ढुण्ढि " नाम गणेश जी का माना है । और गणेश' नाम को अनेक जैन कवियौं ने '"गणधर' महाराजका वाचक माना है अरु अपनी काव्यौं में प्रयोग भी दिया है देखौ मान सागर यति कृत ' मान सागर पद्धति " का मंगला चरण

श्री आदि नाथ प्रमुखाः जिनेशाः श्री पुण्डरीक प्रमुखाः गणेशाः सूर्य्यादि खेटर्च्च युताश्च

भावाः शिवा यसन्तु प्रकट प्रभावा :

पुनः देखौ श्री मान तुंगा चार्य्य कृत नृपतिके प्रति आशीर्वाद

जटा शाली गणे शाली शंकरः शंकरांकितः
शुगाधीशः श्रियं कुर्य्या द्विलसतु सर्व मांगलम्

इस प्रकार यदि ढुण्ढि शब्द परम पूज्य गणधर देव का वाचक है अरु परम मांगालिक है तो क्या? मंगलदंडी केवल तेरे लिखने ही से कुत्ते से भी भूंडा हो सकता है; किन्तु तैंने इस ढुण्ढि शब्द को अपभ्रंश करिके जो ढुंढा लिखा है अथवा उच्चारण किया है सो ही कुत्ते के भौंकने से वढ़कर भूंडा कार्य्य किया है;

'ढुढि अन्वेषणे'

धातु से ही ढुण्ढि- ढुण्ढक- और ढुण्ढिका शब्द वनते है सो सब उत्तम अर्थ केही कहने वाले है; इसी कारण से श्री हेम चंद्रा चार्य्य कृत "प्राकृत व्याकरण" की टीका का नाम 'ढुंढिका' है; देखो उपर्युक्त ग्रंथ की पृष्ट २ पंक्ति ६ मी

सिद्ध हैमाष्टमा ध्याय, प्रोक्तं प्राकृत लक्षणं।
क्रियते ढुंढिका तस्य, नाम्ना व्युत्पत्ति लक्षणा॥

अतएव सुज्ञ जन उक्त शब्दोंको उत्तम अरु सार्थक मानते हैं अरु तू जो द्वेष बुद्धि से ढुण्ढि आदि शब्दौं को अशुद्ध करके बोलता तथा बुरे बतलाता है सो तेरे पाप कर्म्मोंका उदय??

प्रथम काव्यके दूसरे चरण में तूं ने यह लिखा है कि

जिनके नाम से रोटी खावे उनका नाम भुलाया है॥

उत्तरः-मंगल दंडीजी तुम्हारा यह कथन भी दंभ से खाली नहीं है; क्यों कि सनातन जैन साधु किसी का भी नाम लेकर रोटी नहिं याचते हैं अरु न किसी के नाम से रोटी मांगी हुई खाते हैं; कारण यह है कि जिनोक्त सिध्दान्तौं में कहीं भी " साधु को अमुक के नाम से रोटी मांगनी तथा खानी "ऐसे नहिं कहा है; किन्तु दंडीजी, तुम्हारा उक्त लेख तुम्हारे ही समान धर्म्म वालेओं पर अवश्य घटता है, क्यों कि तुम्हारे जितने भी दंडी हैं सो सब

"धर्म्म लाभ"

के नाम से अर्थात् धर्म्म के नाम का माहात्म्य जता कर रोटी मांगते अरु खाते हैं तौभी वहतौ दया मयी धर्म्म को स्वयम् भूले हुये हैं इस का आश्चर्य्य ही क्या ? परंतु वह अन्य भद्रिक अरु भव्य जीवों को भी हिंसा मयी धर्म्म वता कर दया धर्म्म को भुलाते हैं सो महदाश्चर्य्य है ??
प्रथम काव्य के तीसरे चरण मे तूंने लिखा है कि

जिन मारग का नाम विसारी साध मारग निप जाया है ॥

उत्तरः—रे दंडी यह लेख भी तेरा दंभी पने का है; क्यों कि सनातन जैन साधु ओं ने न तो जिन मार्ग विसारा है और न साधु मार्ग निपजाया है; किन्तु साधु मार्ग को धारण करते है; और साधु मार्ग तथा जिन मार्ग भिन्न२ नहीं है; किन्तु एकही है जो जिन मार्ग है सो ही साधु मार्ग हो सकता है नतु अन्य; क्यों कि जब तक केवल ज्ञान नहिं होता है तब तक मनः पर्य्यव ज्ञानी जिन साधु पद में ही है तिनका जो मार्ग सो ही जिन मार्ग अर्थात् साधु मार्ग है

अतएव साधु मार्ग यदि निपजाया हुवा है तो जिन राज का ही है अन्य का नहिं ??

दंडी जी आपके तीशौं हीं काव्यों का चतुर्थ चरण एक साही है इस लिये उसका उत्तर हम 'दंडी दंभ दपर्ण' के अंत में देंगे ??

दूसरे काव्य के प्रथम चरण में यह लिखा है कि

खक्खा–खाने खातर मुंड़ा ढुंढ़ा सीस मुडाया है

उत्तरः–दंडी तेरी उक्त कल्पना भी दंभ से भरी हुई है; क्यों कि सनातन जैन श्वेताम्बर साधु खाने के लिये मूंड नहीं मुडाते हैं;किन्तु स्व पर के हितके लिए द्रव्य तथा भाव से मुण्डित होते हैं; वर्तमान समयमें भी अनेक मुनि ऐसे है जिन्होंने लक्षावधि द्रव्य और सकल सुखौं की सामिग्रियां को त्यागी हैं तो तेरा लेख कैसे सिद्ध हो सकता है;हाँ तुम्हारे दंडी ही प्रायः खाने के लिऐ मूंड मुडाते हैं। इसी से तुम्हारे दंडी आधा कर्म्मी आदि सदोप आहार भोगते हैं; यह

प्रत्यक्ष वार्ता है कि जब वह एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को जाते हैं तब उनके आगे या साथ में भोजनादि की सामिग्रीओं से भरी हुई शकटिकायें चलती हैं और जहां कहीं भिक्षान्न उन को नहिं मिलता है तहां उनके अंध श्रद्धालु गृहस्थ उन्हें सरस भोजन बना कर दे देते हैं और वह बड़े मजे से माल उड़ाते हैं; देखो तुम्हारे ही दंडी लाभ विजय जी " स्तवनावली " ग्रंथ की पृष्ठ १७२ पंक्ति ७ मी से लिखते हैं कि

सवेगी विहार करते हैं जद (जब) गृहस्त आदमी साथ देते हैं बोझ वगैरे (ले चलने) कूं फेर मजल पर घर न होने से दाल बाटी गरम पानी कर के मजे में खाते पिलाते इच्छानुकूल ठिकानें पहुंचाते हैं ओ (यह) पाप कहां छूटैगा

पुनः देखो उपर्युक्त ग्रंथ की ही पृष्ठ १७३ पंक्ति दूसरी से

पेम विजय जी आगरे आये गये आदमी

खाते पिलाते लाये पोंह चाये उत्तकृष्ट (उत्कृष्ट) वाजे (कहलाये) फेर लसकर से वीर विजे (विजय) जी कलकत्ते गये नथमल जी गोल छा नें अेक एक गाड़ी [और] आदमी दीये सेवा करते ले गये पोंहचे वाद गाड़ी वलद वेच दीये असे जानते पाप कहां छूटेंगे फेर दोलत विजय जी आगरे से कानपूर तक पोह-चाये इसी तरें रवाज है

इत्यादि कितने ही प्रमाण हैं कहां तक लिख कर बतावें।

काव्य के दूसरे चरण में तैंने लिखा है कि

वासी वीदल कंद मूल आचार का स्वाद उड़ाया है ॥

उत्तरः—रे दंडी यह लेख केवल तेरा दंभ पूरित है; क्यों कि शुद्ध—निर्दोष—वासी अन्न आदि लेने का निषेध जिनागमों में कहीं भी नहीं है किन्तु श्री "प्रश्न व्याकरण"

सूत्र के पञ्चम सम्वर की चतुर्थ भावनाधिकार मे श्री वीर पिता ने यह तो कहा है कि अमनोज्ञ अरस विरस शीतल रूक्ष अरु दोसीण अर्थात् वासी भोजन आदि को भोगता हुआ साधु तिनके रसा स्वाद पर द्वेष न करै॥ अब दंडी जी यदि बुद्धि होय तो विचार करौ कि शुद्ध निर्दोष वासी अन्नादि के ग्रहण करने मे क्या? दोष है। और तुम दंडी क्या? वासी मिष्टान्न नहिं खाते हौ; और जिस वासी अन्नादि के वर्णादि परि वर्त्तन हो जाते है सो तो रस चलित हो जाने से सदोष होता है, रे निरक्षर दंडी तिसे तो सनातन जैन मुनि छूते भी नहीं है;

ऐसे ही द्विदल का भी निषेध जिनागमों में कहीं नहीं है यदि कुछ विद्वत्ता का गर्व्व रखते हो तो हमारे मान्य सिद्धांतों का प्रमाण दिख लाओ अन्यथा तुम दंडी उत्सूत्र भाषी तो हो हीः

अरु रे दंडी जो तूं ने कंदमूल के विषय में लिखा है सो सचित्त कंद मूल का जिनागमो में निषेध है इस कारण सनातन जैन साधु तो तिन्हें छू ते भी नहीं अरु अचित्त

का कहीं निषेध नहीं: देखो श्री " दशवै कालिक " सूत्रके तृतीयाध्ययन की सप्तम गाथा का तृतीय पद

कंद मूले य सच्चित्ते

अब दंडी जी ईषत् निष्पक्ष बुद्धि से तुम्हीं विचारो कि यदि कंद मूल का सर्वथाही निषेध होता तो कंद "मूले"य इस शब्द के साथ "सच्चित्ते" इस शब्द को क्यो ? जोड़ा। ऐसेही निर्दोष संधान को लेने का निषेध जिनागमो मे नहीं है अरु सदोष को तो छूते भी नहीं: ??

काव्य के तीसरे चरन मे तू लिखता है कि

अंदर का मुंह खुल्ला करके ऊपर पाटा लाया है

उत्तर:—रे दंभी दंडी, सज्जनों के तो एकही मुख होता है जिसका जिनोक्त मर्य्यादा से यत्न रखते है और दो मुखतो दुर्जनोंके होतेहै अथवा तुझ दंडी के दोमुख होंगे??

तीसरे काव्य के प्रथम चरण में तेने लिखा है कि

गग्गा—गुदा मूत से धोवे पानी से डर आयाहै

उत्तर:—रे दंडी उक्त लेख तेरा नितान्त दंभ का है

अरु उक्त लेखको लिखकर तूं ने पूर्ण अभ्याक्ख्यान रूप पाप की पोट शिरपर धारण की है तू इस पाप के भार से धरा तल में नहिं धसाकि जाय ? कारण कि पापीओं की अधोगति ही होती है. हम इस बातको दावे से कहते है कि कोई भी सनातन जैन मुनि गुदा को पानी से डरकर मूत्र से नहिं धोते. अरु नाहीं पूंछ ने पर झूठ बात बतलाते. अरु नाहीं मूत्र का नाम नो पानी ही धर छोडा है. यह वार्त्ता तेरी सर्वथा मिथ्या है यदि सत्य है तो प्रमाण दे कर सिद्ध कर कि किस सुसाधु ने तो तुझ को पूंछने पर झूठ बात बतलाई अरु किस सुसाधु ने तुझे मूत्रका नाम नो पानी बतलाया है ! अरु किसके सामने बतलाया ?[१]

यह तो अवश्य है कि तुम्हारे ही पूज्य पाद आचार्यों ने मूत्र का नाम "अणाहार" रख छोडाहै, "देखो प्रकरण माला' की पृष्ठ ८४ की पंक्ति दूसरी

"अणाहारे मोय निंबाई"

उक्त ग्रंथ की उक्त पृष्ठ की ही पंक्ति ५ मी में अर्थ देखो

१. उक्त बातों को जब तक तूं किसी सुसाधु के लेख से सिद्ध न करेगा तब तक महामृषा वादी समझा जायगा,

अनाहार ने विषे मात्रुं (मूत्र) तथा लींबड़ा प्रमुख जाणवुं."

अरु सुसाधु जो रात्रिको पानी नहीं रखते सो तो वीतराग की आज्ञा का पालन करते हैं:

यदि कहोगे कि रात्रि को जंगल जाने का काम पड़े तो किस तरह शुद्धि करते हो?

ढंढी जी इस का उत्तर श्रीयुक्त लाला पन्नसिंह जी उपमंत्री आगरा निवासी ने "साधु गुण परीक्षा" नामक ट्रेक्ट में बड़े विवेचन पूर्वक दिया है: तारीख १४-८-१४ को श्री साधुमार्गी जैन उद्योतिनी सभा-मानपाड़ा आगरा ने तिसे प्रकाशित कराया है: यदि नेत्र होंय तो तिसे पढ लेना; यहां हमने पिष्ट पेषण समझ के तथा ग्रंथ बढ़ जाने के भय से नहिं लिखा है:

अब ढूंढी जी हम तुम्हारे से नम्रता के साथ पूंछते हैं कि तुम्हारे ग्रंथों के प्रमाण से जो तुम रात्रि को पानी रखते हो सो प्रत्येक ढंडी के हिसाबसे कितना रखते हो?

और तुम्हारे ग्रंथों में कितना परिमाण लिखा है ? अरु वह रक्खा हुवा पानी का पात्र दैव वश लुड़क जावै अरू तुम रात्रि के समय जंगल जाऔ तव कैसे शुद्धि करते हो ?

अरू जो तुम्हारे किसी दंडी को ग्लानि के कारण रात्रि में वमन [उलटी--कै] हो जावे तौ तिस रक्खे हुवे पानीसे गंडूषा अर्थात् कुरले करलेते हौ या नहीं? क्यों कि मुख अशुद्ध रखना भी तो लोक विरुद्ध है;

दंडी जी हमें तो यह प्रतीत होता है कि मुख शुद्धि करने को रात्रिके समय तुम तिस रक्खेहुवे जलसे अवश्य कुरले करलेते होऔगे.कारण कि तुम्हारे आचार्य्यों ने जव ऐसाही लिख दिया हैकि चौविहार अर्थात् चतुर्विधाहार प्रत्याख्यान में यदि रोगादि कष्ट होय तौ गो मूत्र आदि सर्व जाति का अनिष्ट मूत पी लैने से भी व्रत भंग नहिं होय ? तो तिस चूने डाले हुवे अपेय पानी की तौ कथाही क्या है ? दंडी जी विना प्रमाण के तुम्हारी संतुष्टी नहिं होवैगी अतएव देखौ दंडी आनन्द विजय जी=कालि काल सर्वज्ञ का वनाया हिंदी " जैन तत्वादर्श " पृष्ठ ३९७ की

पंक्ति ८ मीसे

गोमूत्र -गलोय, कडु, चिरायता, अतिविष, कुडे की छाल, चीड, चंदन, राख, हरिद्रा, रोहणी, उपलोट, वज, त्रिफला, बांबूल की छिल्लक, धमासा. नाहि. आसंध. रींगणी. एलुवा. गुगल. हरडां. दाल.

कर्पास की जड, जाड, वैरी कंथेरी, करीर, इन की जड पुंआड वोह थोरी आछि मंजीठ बोल वीउ काष्ठ कूंआर चित्रक कुंदरु प्रमुख जो वस्तु खाने में अनिष्ट लगे वो सर्व अनाहार है यह अनाहार वस्तु रोगादि कष्ट में चौविहार प्रत्याख्यान में भी खा लेवे तो भंग नहीं.

पुनःदेखौ शाह भीमसिंह माणक साहेव का संवत् १९६२ का छपाया हुआ श्री "प्रति क्रमण" सूत्र विशेष अर्थ वाले की पृष्ठ ४७८ पंक्ति ६ [पच्चक्खानभाष्य]

के ३ द्वार की १५ मी गाथा का चतुर्थ चरण

अणाहारे मोय ।निंबाई ॥ १५ ॥ दारं ॥३॥

पुनः देखो उपर्युक्त ग्रंथ की पृष्ठ ४७६ पंक्ति १२ मी से इसी का अर्थ

हवे अणा हार वस्तु कहे छे. अने पूर्वे कहेला चारे आहार मांहेला कोई पण आहार मां न आवे. परन्तु चउ विहार उप वासें तथा रात्रि ने चउ विहारें वावरी कल्पे. ते अणा हार वस्तु जाणवी- तेनां नाम कहे छे.

[अणा हारे क०] अना हार ने विषे कल्पे ते व.तु कहे छे. [मोय के०] लघु नीति जाणवी. (।निंबाई के०) निंबा दिक ते निंब नी शली पानडा प्रमुख पांचे अंग ए सर्व अना हार वस्तु जाणवी. आदि शब्द थकी त्रिफला. कडू.करि

यातुं. गलो. नाहि. धमासो; केरडा मूल; बोर छालि मूल; बावल छालि; कंथेर मूल; चित्रो; खयरसार; सूखड; मलयागरु; अगरु; चीड; अंबर;कस्तूरी;राख; चूनो;रोहिणी वज;हालिद्र; पातली;आसगंधी;कुंदरु; चोपचीनी; रिंगणी; अफिणादिक सर्व जाति नां विष; साजीखार, चूनो; जाको; उपलोट; गूगल; अतिविष; पूंयाड; एलीओ; चूणीफल; सूरोखार; टंकणखार; गो मूत्र आदें देइने सर्व जातिना अनिष्ट मूत्र चोल; मंजीठ; कणय मूल; कुंआर; थोहर अक्कादिक पंचकूल, खारो, फटकडी, चिभेड इत्यादिक् वस्तु सर्व अनिष्ट स्वाद वान् छे, अने इच्छा विना जे चीज मुख मां प्रक्षेप करी यें ते सर्व अणाहार जाणवी- ए उपवास मां पण लेवी सूजे, अने आयंविल मध्ये पाणाहार

पच्चक्खाण करया पछी सूजे- ए आहार नुं त्रीजुं द्वार थयुं, उत्तर भेद अढार थया ॥१५॥

वाह ढूंडी जी धन्य है तुम्हारे ग्रंथ कर्त्ता सुलेखकों को कि जिन्हों ने सर्व जाति के अनिष्ट मूत्र पीने की तुमको विधि बतलाई ! और कोटि शत धन्य तुम अंध श्रद्धालु ढूंढिओं को है कि जो तुम कारण वश उपवास तथा रात्रि के चउविहार प्रत्याख्यान में भी अपवित्र मूत्र पी लेते हो!

ढूंढीओ तुमको लज्जा नहीं आती हैकि तुम स्वयं तो मूत्र पीने रूप घृणित कृत्य को ग्रंथोक्त मानते हो और आचारण भी करते हो तो भी सुसाधुओ की मिथ्या निंदा करते हो ! हमें विश्वास हैकि इस लेख को देखकर तुम शान्त रहोगे यदि पुनः ऐसीही कुतर्क करोगे तो तुम्हारी बराबर का निगत्रप कौन होगा ? जैसा कहोगे वैसा सुनोगे क्यों कि समयानुसार सज्जनों को भी **शठं प्रति शाठ्यं कुर्य्यात्** यह नीति आदर नीय है; और श्री " निसीथ " सूत्र के चतुर्थोद्देश में जो अशुचि रहने का वीत राग ने दंड विधान किया है तिसै तोरे मूढ

ढंडी हम तथ्य मानतेही है अतएव श्री "स्थानांग" सूत्र के पंचम स्थान में पंच प्रकार की शुचि कही है तिन में से उचित शुचि समाचरण से सुसाधु सदा परम पवित्र रहते है प्रायश्चित्त का कार्य्य सशक्त नहीं करते है !!

चतुर्थ छंद के प्रथम चरण मे ढंडी तूने यह लिखा हैकि

घघ्घा—घर की खवर नहीं है क्या घर में बतलाया है।

उत्तरः—रे ढंडी तेरा उक्त लेख तुझपरही घटताहै, क्योंकि तुझ ढंडी कोही तेरे घरकी यह खवर नहीं है कि तेरे मान्य सिद्धांतों में क्या क्या लिखा हुवा है, यदि तुझको खवर होती तो "त्रिंशिका" के तीसरे छंद में सुसाधुओं की व्यर्थ निंदा नहिं लिखता, अस्तु.

हम इस विषय मे इतना ही उत्तर लिखना समुचित समझते हैं कि तू एक वार तेरे राय धनपत सिंह वहादुर मकसूदा वाद निवासी का छपाया हुआ जो प्रथमांग है तिसके द्वितीय स्कंध की पृष्ठ १०३ की पंक्ति २३मी से

पृष्ठ १०४ तक के लेख को यथा चार सहित पढ़ लेना. जिस से तुझे तेरे घर की खबर पड जायगी ??

और जो चतुर्थ छंद के दूसरे चरण में ढंडी ने अपनी अल्पगता प्रकट कर लिखा है कि **बार गुणो+अरिहंत विराजे पाठ कहां दरसाया है ॥**

तथा उस के नोट में यह लिखा है कि

[ढुंढिये मानते है कि बारा गुण सहित और अठारा दोष रहित अरिहंत भगवंत होते है परन्तु बत्तीस सूत्रों के कि जिन को ढुंढिये मानते है मूल पाठ में कहीं भी यह वर्णन नहीं है और न बारागुण १८ दोष का स्वरूप है ?]

उत्तरः—क्यों ढंडी क्या तेरा यह लेख अल्पज्ञ पने का नहीं है क्यों कि सनातन जैन सुसाधु बत्तीश सिद्धांतों के मूल पाठ से ऐसा मानते ही नहीं कि अरिहंत भगवन्त बारह ही गुण सहित और अट्ठारह ही दूषण रहित होते हैं. परन्तु सिद्धान्तों के रहस्य तथा बहु श्रुतों की धारणा से तीर्थंकर पद प्राप्त अरिहंत भगवन्त को मुख्य बारह गुण

सहित और अट्ठारह दूषण रहित मानते हैं, और सामान्य अरिहंतों को तो चार, अट्ठारह, तथा २१ और अनंत गुण सहित और अट्ठारह दूषण रहित मानते हैं, और यह तो तुम दंडी भी तुम्हारे मान्य ग्रंथ तथा सिद्धान्तों से सिद्ध नहीं कर सकते कि सर्व अरिहंत अशोक वृक्षादि बारह गुण सहित होते ही हैं, क्यों कि अशोक वृक्षादि कितने ही गुण तीर्थंकरों के ही होते हैं सामान्य अरिहंतों के नहीं होते यदि होते हों तो तुमही तुम्हारे मान्य ग्रंथों का प्रमाण प्रकट करो!!

चतुर्थ छंद के तीसरे चरण में दंडी ने जो भंग की तरंग में यह लिखा है कि **मन को भाया माम लिया मन कल्पित पंथ चलाया है ।**

उत्तरः—दंडी का यह लेख नितान्त मिथ्या है; क्यों कि जैन सुसाधु तो मनोक्त नहीं किन्तु सिद्धांतोक्त सब भावों को ही तथ्य मानते हैं और सिद्धांतोक्त पथ में ही प्रवर्त्तते हैं कोई भी मन कल्पित पंथ नहीं चलाया, परन्तु तुम दंडी

ओं के ही सावद्याचार्यों ने सिद्धांतों के अर्थ अवश्य मन माने कर लिये सो हम इसी त्रिंशिका के पंचम छंद के उत्तर में लिखेंगे, और तुम्हारे ही पूर्वजों ने द्वादश वर्षीय दुर्भिक्ष से पीडित होकर ही यह प्रतिमा पूजन रूप मन कल्पित पंथ चलाया है; क्यों कि जिनागमों में कहीं भी तीर्थंकरों की प्रतिमा को पूजने तथा वन्दने का विधान साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका ओंको नहीं किया है क्यों दंडी जी इस बात को = बनारस के अनेक विद्वानों के समक्ष जैनों ने जिन को "जैन दर्शन दिवा कर" का आस्पद प्रदान किया था उन = डाक्टर हरमन जे को वी साहब ने अपने अजमेर के पबल्कि व्याख्यान में क्या भली भांति यह सिद्ध नहीं कर दिया है कि जिनोक्त ग्यारह अंग बारह उपांगों में कहीं भी तीर्थंकरों की मूर्त्ति पूजने का विधान नहीं है किन्तु यह प्रथा थोडे काल से चली आती है देखो डाक्टर साहब के व्याख्यान का शिरू फिकरा

"No distinct mention of the worship of the idols of the Tirthankaras seems to be made in the Angas and Upangas"

जिस का यह भावार्थ है कि

अंगों और उपांगों में कोई खुलासा जिकर तीर्थंकरों की मूर्त्ति पूजन का नहीं किया है

दंडी जी जो शठ ऐसा कहते हैं कि ग्यारह अंग और बारह उपांगों में तीर्थंकरों की मूर्त्ति पूजने का विधान है उनके मुख पर उक्त जैन दर्शन दिवाकर महोदय का उपर्युक्त कथन चपेटा के शदृश है ??

पंचम छंद के प्रथम चरण में दंडी तू ने यह लिखा है कि

चच्चा-चोरी देव गुरु की कर के अति हर्षाया है।

उत्तरः-रे दंडी तेरा यह लेख परिपरा वाद पाप से प्रलिप्त है; क्यों कि सनातन जैन सुसाधु कोई भी देव गुरु की चोरी उपयोग युक्त नहीं करते हैं और न हर्षाते हैं;परन्तु तुम दंडी अवश्य ही देव गुरू की चोरी करते हो तथा हर्षाते भी हो सो ही लिखते हैं. देव की चोरी तो तुम इस तरह करते हो कि देव जो तीर्थंकर भगवान जिन्होंने साधुओं को आधा कर्म्मयादि सदोष आहार लेने का निषेध किया है तोभी तुम मार्ग्ग में तुम्हारे अंध श्रद्धालु ग्रहस्थों से

सरा सर आधा कर्म्मी आहारादि लेकर खाते हो और साधु नाम धराते हो, पुनः ग्रीष्म काल में प्रायः कोई भी ग्रहस्थ स्नानादि के लिये तीन वार उफान आय ऐसा गरम जल नहीं करता लेकिन तुम्हारे लिये बनता है जिसे तुम लेते हो; यह तो तुम प्रत्यक्ष देव की चोरी करते हो; इसी तरह गुरु की भी चोरी करते हो; तुम्हारी बराबर का वाजिंदा चोर अन्य कौन है कि जो तुम ढंडीओं ने अनेक सिद्धांतों में पाठांतर के बहाने से नवीन२ मन माने पाठ बना कर प्रक्षेप कर दिये और कहींपर अक्षर तथा मात्राओं की घटाया बढाई कर दीनी, दंडी जी तुम्हारी संतुष्टि के अर्थ किंचित् उदाहरण भी क्रम से लिखते हैं देखो श्री "उववाई" सूत्र में चंपा नगरी के वर्णन में 'बहुला अरिहंत चेइयाइं

"

यह पाठ पाठांतर करके प्रक्षेप करा है; क्यों कि अनेक प्राचीन प्रतों में यह पाठ नहीं है;

"ज्ञाता धर्म्म कथांग" सूत्रमें द्रोपदी के वर्णन विषे में णमोत्थुणं इत्यादि पाठ विशेष प्रक्षेप कर दिया है: क्यों कि बहुत से साधु तथा श्रावकों के पास प्राचीन प्रतें हैं

जिन में णमोत्थुणं देने का पाठ नहीं है दिल्ली में श्रीयुक्त लाला मन्नूलाल जी अग्रवाल के पास भी एक श्री "ज्ञाता धर्म्म कथॉग" सूत्र की प्राचीन प्रति है जिस में भी द्रौपदी के णमोत्थुणं देने का पाठ नहीं है वह प्रति हम ने देखी है और यदि दंढी जी दारुण भवार्णव से भय भीत हो तो तुमभी उन श्रावकजी से विनय पूर्वक उस सूत्रको देखकर शुद्ध होसक्ते हो पुनःश्री "उपाशक दशांग" सूत्र में आनंद जी श्रावकके वर्णन विषें "अणण उत्थिय परिग्गहियाणि चेइ याइं" इस पाठ में भी "अरिहंत" शब्द तुम दंडिओं ने प्रक्षेप किया है; क्यों कि अनेक प्राचीन प्रतिओं में तथा संवत् ११८६ की लिखी ताड़ पत्रों के ऊपर एक श्री "उपाशक दशांग" सूत्र की प्रति जो जेसलमेर के पुस्तकालय(भंडार) में है जिस में " अणण उत्थिय परिग्ग हियाणि चेइ याइं" इतना ही पाठ है;

पुनः श्री "उपाशक दशांग" सूत्र के अंग्रेजी अनुवादक ए. ऐफ. रुडल्फ होर्नल साहब के पास इसी सूत्र की (ए. बी. सी. डी. ई.) अर्थात् पांच प्रतियें है जिन में ए. बी.

सी. संख्या की प्रतियों में "अरिहंत" शब्द नहीं है ? देखो सन् १८८८ में वेकुष्ट मिशन कलकत्ता की उक्त महोदय कृत श्री " उपाशक दशांग " सूत्र के अंग्रेजी अनुवाद की छपी हुई प्रति में हिन्दी "उपाशक दशांग " के प्रथम अध्ययन की पृष्ठ २३ पंक्ति १९ मी को अरु इस विषय में उक्त महोदय की सम्मति यह है कि वास्तव में जिनोक्त पाठ में तो " अरिहंत तथा चेइयाइं" ये दोनों ही शब्द नहीं हैं और पीछे से टीका कारों ने प्रक्षेप किये हैं उक्त महोदय ने युक्तिओं से सिद्ध भी किया है देखो उपर्युक्त सूत्र की उक्त महोदय कृत अंग्रेजी अनुवाद के दोयम जिल्द की पृष्ठ ३५ पंक्ति १४ में नोट ८६ में को

The words cheiyâim or arihanta cheiyâim, which the M. S. S. here have appear to be an explanatory interpolation, taken over from the commentary, which says the objects for reverence may be either Arhats (or great saint) or cheiyas If they had been an original portion of the text, there can be little doubt but that they would have been cheiyâni "

जिस का यह भावार्थ है कि

शब्द चेइयाइं और अरिहंत चेइयाइं

जो हस्त लिखित पुस्तकों में है सो विदित होता है कि ये शब्द टीका से लेके मिला दिये हैं जिस टीका में लिखा है कि पूजनीय या तो अरिहंत [महर्षि] या चैत्य हैं यदि ये शब्द मूल पुस्तक के होते तो कुछ सन्देह नहीं कि ये शब्द चेइयाणि होता

दंडी जी कुछ भी हो परंतु यह तो वार्त्ता अवश्य उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि तुम दंडीओंने "अरिहंत" शब्द तो मिलाया ही है;

दंडी जी ऐसे ही अनेक सूत्रों में तुम दंडीओं ने नवीन पाठ प्रक्षेप कर दिये हैं, और जब कि अनंत संसार परिभ्रमण का भय छोड के पाठ ही परिवर्त्तनकर दिये तो अक्षर तथा मात्राओं की घटाया वढायी कर देने में तुम दंडीओं को क्या मुश्किली है ? तथापि दंडी जी तुम्हारी सतुष्टि के लिये थोड़े से उदाहरण देना आवश्यक समझते हैं

देखो तुम्हारे दंडी आनंद विजय जो कि पहिले सनातन जैन साधुओ की सेवामें रहते थे फिर सनातन जैन धर्म्म से पतित होकर तुम दंडीओं का शरण लिया और तुम ने उस को योग्य न होने पर भी "कलिकाल सर्वज्ञ" बनाया

तिस न हिन्दी के "सम्यत्क शल्योद्धार" ग्रंथ की पृष्ठ२५६ पंक्ति १२ में 'श्रीआचारांग' सूत्र का ऐसा पाठ लिखा है

" जाणं वा नो जाणं वदेज्जा "

अब दंडी जी वक्तव्य यह है कि उक्त पाठ इस तरह नहीं है; क्यों कि =मकसूदा बाद निवासी रायधन पतसिंह बहादुर= का छपाया हुआ जो श्री " आचारांग " सूत्र है तिसके द्वितीय स्कंध की पृष्ठ १०३ पंक्ति ११ और १२ में शुद्ध पाठ इस तरह लिखा है

जाणं वा णो जाणंति वदेज्जा "

दंडी जी तुम्हारे दंडी आनंद विजय जी ने उक्त पाठ में " णो " को बदल कर तो " नो " कर दिया और दंडी आनंद विजय जी उक्त पाठ में से " ति,, को तो सर्वथा ही खा गये ! किसी कवि ने सत्य ही कहा है कि

निम्ब न मीठौ होय सींच गुड़ घीव सौं, जा कौ पड्यौ स्वभाव जायगौ जीव सौं अस्तु;

दंडी जी ये उपर्युक्त प्रमाण हमने तुम्हारे पूर्व जों के प्रकट लिख दिखाये हैं परन्तु इन उदाहरणो को आप प्राचीन (बासी) समझ कर अवश्य अप्रसन्न हो औगे; क्यों

कि वासी पदार्थो से आप को बहुत अरुचि है अतएव एक उदाहरण हाल का ताजा और गरमा गरम आप के सम्मुख समर्प्पण करते हैं आशा है कि इस ताजा उदाहरण से आप का चित्त अवश्य प्रसन्न हो जायगा: लीजिये: देखो दंडी जी तुम तुम्हारा 'प्रति क्रमण' सूत्र संवत् १९६२ माघ कृष्ण १२ को शाह भीमसिंह माणेक के छपाये हुये की पृष्ठ ४७८ पंक्ति ९ मी में (पच्चक्खाण भाष्य) के ३ द्वार की १५ मी गाथा का चतुर्थ चरण

" अणाहारे मोय निंवाई॥ १५॥ द्वारं॥ ३॥ "

अरु उपर्य्युक्त ग्रंथ की पृष्ठ ४७९ पंक्ति १२ मी मे उक्त चरण का अर्थ लिखा है दंडी जी तिस अर्थ का अक्षर सहित उल्लेख हम इस दंडी दंभ दर्प्पण में प्रथम कर आये हैं; तिस अर्थ में तुमने ऐसे लिखा है कि चउ विहार उपवास मे तथा रात्रि के चउ विहार में (मोय कहतां लघुनीति=गौ मूत्र आदि देड ने सर्व जाति ना आनिष्ट मूत्र) पीने से व्रत भग नहीं होता है !

परन्तु जब पाञ्चाल देश के गुजरॉ वाले शहर में संवत् १९६५ में तुम दंडीओं का वैष्णवों के साथ शास्त्रार्थ हुवा था तब तुम दंडी ओं ने सनातन जैन धर्म्मी ओं पर भी पब्लिक व्याख्यानों में मिथ्या आक्षेप किये उस समय

सनातन जैन धर्म के अग्र गएय महोदयों ने तुमको मृषा वाद रूप पाप से बचाने के लिये पब्लिक में तुम्हें उक्त पाठ तथा अर्थ को बताया और आम पब्लिक में यह जाहिर किया कि देखो इन दंडीओं के मान्य इस प्रतिक्रमण सूत्र में इनको व्रत मे भी मूत्र पीना लिखा है; फिर ये अपने अपराध को हमारे पवित्र धर्म्म पर लगा कर व्यर्थ हमारी निंदा करते हैं यह महदाश्चर्य्य है !!!

दंडी जी तब तुम दंडिओं को कितना लज्जित होंना पड़ा था यह तो गुजरां वाले के जैनेतर भी जानते हैं.।

अतएव वहां तुम दंडीओं ने अपने सर्वांग मत की हानि समझ सम्मति कर के तत्पश्चात् उक्त "प्रतिक्रमण" सूत्र में से प्रथम की छपी हुई पृष्ट ४७६ मी और ४८० मी निकलवा कर दुवारा उक्त पृष्ठों की नकली नकल छपवा कर प्रथमा वृत्ति की जिलद में ही प्रविष्ठ करदीं जिनमें से तुमने पृष्ट ४७६ में से (मोय के ०) लघु नीति जाणवी. और आदें देइ ने सर्व जातिना अनिष्ट मूत्र।)इतनी इबारत चुराई है अर्थात् इतना मजमून निकाल लिया है !

दंडी जी यह उभय लोक विरुद्ध दस्यु पने की क्रिया इस वर्त्तमान काल में तुम दंडीओं ने प्रत्यक्ष पणें की है.।

क्या ? अब भी यह न कहोगे कि वास्तव में देव गुरू की चोरी करने वाले दंडी ही वाजिदा चोर हैं ? ?

पंचम छन्द के दूसरे चरण मे दंडी जी ने लिखा है कि

भाष्य चूर्णि निर्युक्ति टीका अर्थ से चित्त हटाया है

उत्तरः—रे दंभी दंडी तेरा यह लेख नितांत निर्विवेकी पने का है; क्योंकि सनातन जैन साधुओं ने भाष्यादि के यथार्थ अर्थों से चित्त नहिं हटाया है किन्तु तुम्हारे पूर्वज सावद्या चार्य्यों ने जो प्राचीन टीका आदिकों को परिवर्त्तन करके दंडी नामक अपने कल्पित पंथ को तथा सिथिलाचार पने को जिनोक्त सिद्ध करने के लिये नवीन टीका आदि ग्रंथ बना लिये है तिनके कितने एक सूत्र विरुद्ध अर्थों को तो हम अवश्य नहिं मानते हए अर्थात् सनातन जैन साधु ही क्या किंतु कोई भी आर्य्य विद्वान तुम्हारे सावद्या चार्य्यों के बनाये हुवे सूत्र विरुद्ध अर्थों को नहि मान सकता; दंडी जी आश्चर्य यह है कि हम अर्थात् सनातन जैन साधु और आर्य्य विद्वान तो क्या किन्तु तुम्हारे ही पूर्वज पार्श्वचंद्र जी ने शीलांका चार्य्यादि टीका कारों के किये हुए अनेक प्रमाणित अर्थों को अप्रमाण माने हैं और सूत्र विरुद्ध अर्थ बतलाये हैं; दंडी जी तुम्हारी संतुष्टि के लिये एक दो उदाहरण भी लिख देना हम यहां

आवश्यक समझते हैं सो ढंढी जी कान उठा कर सुनो आंख उघाड़ कर देखो मकसूदा वाद निवासी राय धनपत सिह वहादुर के छपाये हुए ' आचारांग ' सूत्र के द्वितीय श्रुत स्कंध की पृष्ठ ८२ पंक्ति २१ में पार्श्वचंद्र जी लिखते है

"इहां वृत्ति कारि लोक प्रसिद्ध मांस मत्स्यादिक नो भाव वखाणयो छे परं सूत्र सुं विरोध भणी ए अर्थ ईम न संभवे,

पुनः उक्त सूत्र उक्त स्कंध की पृष्ठ १५३ पंक्ति ११में मूल पाठ

जाणं वा णो जाणंति वदेज्जा

पुनःपृष्ठ १५३ की पंक्ति ७ मी मे इसकी दीपिका टीका

जाणंवा णो जाणंति वदेज्जा

पुनः पृष्ठ १५३ की पंक्ति २४ मे इसकी शिलंगाचार्य कृत टीका

यदि वा जानन्नपि नाहं जानामीति एवंवदेत्

पुनः पृष्ठ १५३ की पंक्ति १७ में भाषा कर्त्ता पार्श्वचंद्र जी उपर्य्युक्त पाठका अनुकूल अर्थ करते हुए और उपर्य्युक्त दोनो टीका कारों के अनर्थ का खंडन युक्तिओं

द्वारा करते हुवे भाषा में लिखते हैं कि

जाण तो हूइ तो पुण हुं जाणुं इम न कहे एतले
पहिलो बीजो वृत वेवे पाल्या
हुइं इहां लिगार एक सन्देह ऊपजिवानो ठामछे
परं डाहा हुइ ते विचारी निरतो बोले
केई इम जाणिसि इहां सूत्र माहि इम
कह्यों छे जाणतो हुइ तो पुण न जाणुं इम
कहे इम कहतां सद्दहतां वीतराग ना वचन
माहि सावज्ज हुइ म्रषा कह्या माटि जिन
प्रणीत सूत्र माहि वीतराग ने वचानि
जीव पुण राखिवा मृषा पुण न बोलिवो
इसोभाव जाणी गीतार्थ मुखि निरतों ओलखी
निरतों सद्दहिये प्ररूपिये ए भाव

देखिये दंडी जी तुम्हारे आचार्यों की करी हुई टीका-दिकों में जो सूत्र विरूद्ध अर्थ हैं तिन्हें तुम्हारे ही आचार्य्य नहीं मानेते है तो सनातन जैन साधु कैसे मानलें ? अपितु ऐसे अनर्थों को कदापि नहीं मान्य कर सक्ते ??

पंचम छंद के तृतीय चरण में दंडी जी। तुम ने लिखा है कि

मन कल्पित झूठे अर्थों से सांचा अर्थ मिटाया है

उत्तरः—रे छल छंदी दंडी तेरा यह लेख भी तेरी अज्ञताका ही आदर्श है; क्यों कि सनातन जैन साधु ऐसा कदापि नहीं करते हैः परंतु दंडी जी तुम्हारे ही पूर्वजों ने मन कल्पित झूठे अर्थ बना बना कर अवश्य सत्य अर्थों को मिटाया है

और तुम भी यथा शक्ति प्रयत्न करते रहते हो, देखो मकसूदा वाद निवासी राय धनपत सिंह बहादुर के छपाये हुए "श्री प्रज्ञापना जी सूत्र की पृष्ठ ५६६ मूल की पंक्ति२ में गणधर महाराज ने तो अभापक के दो भेद कहेहैं जैसे

अभासए दुविहे प०तं० सादिए वा अपज्ज-वसिए साइएवा स पज्ज वासिए

अरु टीका कारों ने अभापक के तीन भेद कहे हैं देखो उपर्य्युक्त सूत्र की उक्त पृष्ठकी पंक्ति १ में यथा

अभाषक स्त्रिविधस्तद्यथा-अनाद्यपर्यवासितः अनादि सपर्य वासितः सादि सपर्य वासितश्च,

अरु उपर्य्युक्त सूत्र की उक्त पृष्ठ की पंक्ति १० मीमें अनुवादक महोदय ने अनोखा ही अनुवाद किया है कि

अभाषकों की गणना के समय तो दो भेद कहे और जब स्वरूप प्रति पादन करने लगे तब एकही प्रकार कह कर चुप हो गये यथा **अभाषको द्विविधः प्रज्ञप्त स्तद्यथा सादि को वा ऽपर्य वासितः**

दंडी जी पुनः देखिये दूसरा प्रमाण की हाल ही में दंडी आनंद विजय जीने सिद्धान्तों के सांचे अर्थ अपने मन गढ़ंत झूठे अर्थों से मिटाये है सो भी नमूना मात्र तुम्हारे बोध के अर्थ हम लिख दिखाते हैं देखो दंडी जी

जाणं वा णो जाणंति वदेज्जा

इस मूल पाठ का अर्थ रायधन पतसिंह बहादुर के छपाये हुए श्री "आचारांग" जी सूत्र के द्वितीय स्कंध की पृष्ठ १५३ की पंक्ति १७ से बृहत्तपा गच्छीय पार्श्वचंद्र जी इस प्रकार यथा तथ्य अर्थ लिखते हैं कि

जाण तो हुइ तो पुण हुं जाणुं इम न कहे एतले पाहिलो बीजो ब्रत बेवे पाल्या हुइं इहां लिगार एक सन्देह ऊपाजि वानों ठाम छे परं डाहो हुइ ते विचारी निरतो बोले केई इम जाणिसि इहां

सूत्र माहि इम कह्यों छे जाणतो हुइ तो पुण न जाणुं इम कहे इम कहतां सद्दहतां वीतराग ना वचन माहि सावज्ज हुइ मृषा कह्या माटि जिण प्रणीत सूत्र माहि वीतराग ने वचनि जीव पुण राखिवा मृषा पुण न बोलिवो इसो भाव जाणी गीतार्थ मुनि निरतों ओलखी निरतों सद्दहिये प्ररूपिये ए भाव

परंतु देखो ढंडी जी हिंदी सम्यक्त्व शल्यो द्धार की पृष्ठ २५६ की पंक्ति १२ से उपर्युक्त सांचे अर्थ को ढंडी आनंद विजयजी ने अपने मन माने झूंठे अर्थ से किस प्रकार मिटाया है आप अपने लकीर के फकीर देवानां प्रिय श्रावकों को बहिकाने के लिये इस प्रकार झूठा अर्थ लिखते हैं कि

जाणं वा नो जाणं वदेज्जा-अर्थ-साधु जाणता होवे तो भी कह देवे कि मैं नहीं जानता हूं, अर्थात् मैंने नहीं देखे हैं

अब कहिये ढंडी जी झूंठे अर्थों से सांचे अर्थों को मिटानेवाले तुम अरु तुम्हारे पूर्वज हुवे, या कुछ कसर रही

यदि अब भी कसर रही लिखोगे तो पुनःकसर मिटाने को तीक्ष्ण चूर्ण दिया जायगा !

छठे छल छंद मे तूंने लिखा है कि

छक्छा-छमच्छरी को चालीसा वीस चोमासे थाया है, पक्खी वार लोगस्स काउसग्गा करना किस में गाया है

इत्यादि, सोभी लेख तेरा मूर्ख पणे का है क्यों कि षडावश्यकों में कायोत्सर्ग पंचम आवश्यक है जिसको प्रति दिन ही साधु को करना ऐसा वीर प्रभु ने सूत्र उत्तराध्यन के २६ मे समाचारी अंध्यन मे कहा है तिस के अनुसार ही सनातन जैन साधु कायोत्सर्ग करते है परन्तु नियमित चार, बारह, वीस, तथा चालीसलोगस्स का ध्यान करना तो किसी सिद्धान्त में नहीं कहा है और ना हम जैन साधु लोगस्स का काउसग्ग करते हैं लोगस्स का काउसग्ग तोसिवाय तुमसे अज्ञानी के और कोई भी बुद्धिमान नहीं मान सकता क्यों कि काया का उत्सर्ग तो हो सकता है परन्तु लोगस्स का तो कायोत्सर्ग किसी भी प्रकार नहीं हो सकता, हां सनातन जैन साधु कायोत्सर्ग रूप पंचमावश्यक में प्रतिष्ठित हुवे स्व स्व शक्ति प्रमाण चतुर्विंशति जिनस्तव का

ध्यान (चिंतवन) करते है परंतु संख्या का प्रमाण सिद्धान्तोक्त नही बतलाते हैं स्व स्व शक्ति प्रमाण देश काल तथा गुरू वाम्नाया नुसार करते है इस में संख्या का प्रमाण पूछना मूर्खता का काम है; जैसे साधु को अनशनादि तप करने की जिनाज्ञा है परंतु कोई साधु एकांतर ब्रत करता है कोई छठ्ठ छठ्ठ पारणा करता है कोई और तरहका प्रकीर्ण तप करता है सब ही वीतराग की आज्ञा में समझे जाते है इस में नियमित संख्या का कोई प्रमाण पूछै तो वह अपनी अज्ञानता प्रगट करता है,

रे दंडी समाचारीओं की भिन्नता तो तुम दंडिओं में भी है; क्यों कि जब कभी वर्द्धन संवत्सर में श्रावणादि मास की वृद्धि होती है तब खरतर गच्छीय और तप गच्छीय आदि दंडी भिन्न भिन्न मासादि में पर्युषण पर्व की आराधना करते हैं; कोई तीन थुई पढते है, कोई चार थुई पढ़ते है, तथा कोई पीत वस्त्र धारकों को कल्पित धर्म्मी बतलाते हैं ऐसे ही कोई श्वेत वस्त्र धारी दंडीयों को बतलाते हैं; क्या इन बातों को तूं तेरे पेंतालीस आगमों से सिद्ध कर सकता है ?

यदि सिद्ध कर सकता है तो पाहिले तूं तेरे सब दंडीओं को दंड देकर सबों की एक समाचारी करा दे तदनंतर हमारे से समाचारी विषयक प्रश्न करने का साहस करना!!

छठे छंद के तीसरे चरण मे रे दंडी तू ऐसे लिखताहै

मूल मात्र बत्ती सूत्रों का खोटा हठ मन ठाया है

उत्तरः—रे पाखंडी दंडी तेरा यह लेख प्रत्यक्ष द्वेषी पने का है; क्यों कि सनातन जैन साधु जो बत्तीस सिद्धान्तों के मूल पाठको प्रमाण मानने का हठ करते है सो वह हठ खोटा नहीं करते हैं किंतु जिण पण्णत्तं तत्तं। इह सम्मत्तं ......।।इस सिद्धांत से जिन भाषित तत्वों को प्रमाण मानने का हठ करना सम्यक्त्व का ही एक अंग है. ऐसा जान कर उस अंग को धारण करते है और अन्य ग्रंथों के अविरुद्धांश को भी मानते है;

पुनः रे दंडी क्या तू बत्तीश सिद्धान्तों के मूल पाठ को प्रमाण नहीं मानता है ?

यदि मानता है तो सनातन जैन साधुओं की व्यर्थ निंदा कर के क्यों पाप की पोट बांधता है ?

त्रिंशिका के सप्तम छल छंद के प्रथम चरणमें तूं लिखताहै कि

जज्जा-जिनवर ठाणा अंगे ठवणा सत्य बतायाहै

उत्तरः—दंडी जी यह तो सत्य ही है और क्या हम स्थापना सत्य नहिं मानते है? जो तुम ने श्री "स्थानांगजी" सूत्र का प्रमाण देने की कृपा करी ॥

परंतु दंडीजी वास्तव में तुम स्थापना सत्य का परमार्थ नहीं जानते हो और वृथा कोलाहल करते हो

रे दंभी दंडी स्थापना सत्य का भावार्थ तो यह है कि किसी वाल ने प्रस्तर (पाषाण) खंड पर तैल सिन्दूरादि लगाय के उस को भैरवादि देव विशेष मान रक्खा है उस को साधु भी कारण वश भैरवादि कह देवे तो उस साधु का वह वचन सत्य है, मिथ्या नहीं; क्यों कि उस वाल ने उस प्रस्तर खंड में भैरवादि की ही स्थापना कर रक्खी है; परंतु स्थापना सत्य का यह परमार्थ नहीं है कि स्थापना को सत्य मान कर स्थापना की ही वंदना पूजना करनी।

रे अज्ञानी दंडी औ तुम तो प्रत्यक्ष स्थापना को ही बन्दते पूजते हो और पूजन मे व्यर्थ अमित त्रश तथा स्थावर जीवों की हिंसा भी करते हो सो नितान्त सूत्र विरुद्ध करते हो।

यदि कहोगे कि स्थापना के देखने से हम को साक्षात् भगवान की याद आजाती है इस लिये हम स्थापना को बन्दते पूजते हैं

तो हम तुम से पूँछते है कि तुम इस स्थापना को क्यों बन्दते पूजते हो ? अर्थात् उस स्थापनाको देखने से जिस

साक्षात् भगवान की याद आई है उसही क्यों नहीं वन्दते पूजतेहो क्या स्थापना को साक्षात्से भी बडी मानतेहो?

लेकिन स्थापना तो साक्षात् से बडीकदापि नहीं हो सकती ऐसा तो कोई भी मूढ मनुष्य संसार में हम नहीं देखते है कि जो अपनी प्रियतमा की प्रति कृति को अनायास देख के काम से व्यामोहित होय तब अपनी साक्षात् प्रियतमा के साथ तो प्रेम पोषण न करे और उस प्रतिकृति के साथ ही आलिंगनादि काम कुचेष्टा करने लगे

यदि कदाचित् कोई मूढ मनुष्य प्रबल मोहोदय में ऐसा करे भी तो उसे कोई बुद्धिमान बुद्धिमान नहीं कहेगा

रे जड़ उपाशकों कुछ तो बुद्धि से विचार करो

और यह कहना भी तुम्हारा सर्वथा सत्य नहीं है कि

स्थापना के देखने ही से हम को साक्षात् भगवानकी याद आती है किंतु साक्षात् भगवान की याद तो तुम को पहिले अपने मकान पर ही आजाती है उस के पीछे स्थापना को देखने जाते हो ;

यदि दंडी जी तुम को मकान पर ही साक्षात् भगवान की याद नहीं आती है तो वतलाओ कि स्व स्व स्थान से उठ कर स्थापनालय पर किस प्रकार चले जाते हो ?

दंडी जी हम ने तो मूर्त्ति पूजकों को प्रत्यक्ष में देखा है कि प्रायः मूर्त्ति के आगे चढाने को तंदुलादिक पदार्थ पहिले ही हाथ में ले लेते हैं उस के पीछे अपनेरमकान से निकल कर मंदिर को जाते हैं; दंडी जी इस से यह स्पष्ट सिद्ध है कि मूर्त्ति पूजकों को साक्षात् भगवान की याद तो स्थापना के विना देखे अपने मकान पर ही आजाती है परंतु स्थापना (प्रतिमा)के ही देखनेसे याद आतीहै यहबात इससे सिद्धनहीं

पुनः तुम दंडी यह भी नहीं कह सकते हो कि भगवान की स्थापना निय मित वैराग्य भाव की ही उत्पादिका है अत एव वन्दनीय है: क्यों कि सरागी जीवों को भगवान की स्थापना तो क्या ? साक्षात् भगवान की जिन मुद्रा भी वैराग्य भाव उत्पन्न नहीं कर सकती किंतु कर्म्म वन्दनेका हेतु जो राग है उस को ही उत्पन्न करा सकती है; जैसेकि तुम्हारे ही मान्य कल्पसूत्र में लिखा है कि "ध्यानस्थ वीर प्रभु को देख कर अनेक युवतीओं को वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ किंतु राग ही उत्पन्न हुवा और उन्होंने भगवान से प्रार्थना करी कि हे नाथ तुम हमारे भरतार बन जाओ"

दंडी जी जब कि साक्षात् भगवान को देख कर ही सरागी ओं को विराग पैदा नहीं होता है तो उनकी स्थापना को देखने से कैसे वैराग्य पैदा हो सकता है ? कदापि नहीं हो सकता;

यदि कहोगे कि धर्म्मानुरागी विरक्त जीवों को भगवान की प्रतिमा वैराग्य भाव पैदा करती है,

तो दंडी जी बतलाइये कि धर्म्मानुरागी विरक्त जीवों को वैराग्य भाव पैदा करने में वह जो भगवान की प्रतिमा है सो उपादान कारण रूप है, या निमित्त कारण रूप है?

दंडी जी उपादान कारण रूप तो आप कह नहीं सकते; क्योंकि वैराग्य भाव का उपादान कारण तो जीव का क्षायोपशमिक भाव है, परन्तु प्रभु की प्रति कृति नहीं:

और जो निमित्त कारण रूप मानते हो, तो दंडी जी प्रभु की प्रति कृति को ही क्यों मानते हो? अर्थात सारे संसार के दृश्य पदार्थों को ही क्यों नहीं मानते?

क्यों कि विरक्त जीवों को तो संसार के सब ही दृश्य पदार्थ वैराग्य भाव के उत्पादक हो सकते है, जैसे समुद्र पाल जी को चोर, कर कंडू राजा को वृषभ, द्विमुख राजा को इन्द्र स्तंभ, नमि राजा को कंकन, तथा नगगइ राजा को आम्र, इत्यादि अनेक जीवोंको संसार के अनेक दृश्य पदार्थ वैराग्य भाव के निमित्त कारण हुए हैं

परंतु दंडी जी समुद्र पालादिकों ने वैराग्य भाव के निमित्त कारण रूप तिन चोरादिकों को उपकारी जान के

वंदनीय तो नहीं माने, तो फिर तुम प्रभु की प्रति कृति को वंदनीय क्यों मानते हो?

दंडी जी यह भी नियम नहीं है कि अमुक पदार्थ तो राग ही का कारण है वह विराग का नहीं; और अमुक पदार्थ विराग का ही कारण है, परंतु राग का नहीं; क्यों कि जो पदार्थ सरागी को राग के निमित्त कारण रूप होतेहैं वह ही पदार्थ विरागी को विराग के कारण हो जाते हैं; जैसे कि "चाणिक्य नीति दर्पण" में लिखा है कि श्लोक

एक एव पदार्थस्तु । त्रिधा भवति वीक्षितः ॥
कुणपःकामिनी मांसां । योगिभिःकामिभिःश्वभिः

इसका भावार्थ यह है कि किसी श्मशान भूमि में एक मृतक स्त्री को दग्ध करने के लिये अनेक मनुष्य एकत्रित हो रहे थे, इतने ही में अनायास एक विरक्त महात्मा, दूसरा कामी पुरुष, और तीसरा एक कुत्ता, ये तीनों उधर से आ निकले और उन तीनों ने उस मृतक स्त्री को एक ही समय में देखा, देख कर उन तीनों के हृदय में अपने २ भावानुसार इस प्रकार विचार उत्पन्न हुवा, दंडी जी, उन विरक्त महात्मा को तो क्षायोपशमिक भाव के उदय से यह विचार उत्पन्न हुवा कि यह कुणप अर्थात् मृत स्त्री का शरीर है, इस ने मनुष्य जन्म पाके हा ! कुछ तप संयम

किया प्रतीत नहीं होता है तरुणावस्था ही में इस का देह पात होगया है, हा? कालरूप व्याल की गति बड़ी विचित्र है, ऐसी दशा एक दिन मेरे शरीर की भी अवश्य होगी. हा ! यह जानते हुए भी कि

ये तैल मर्दित शीश जिन पर छत्र हैं जाते धरे। हो कर सु चंदन लिप्त रहते नित्य जो मद से भरे॥ कुछ काल के उपरान्त मरघट जा विराजेंगे यही। संस्पर्श से भी घृणा होगी-हाय क्या बाकी रही !॥ सब है विनश्वर एक अविनाशी सखा पाते यहां। उस बंधु के साहाय्य से पाते विजय जाते जहां॥ साथी सदा का लोक-औ पर लोक सुख-दातार है। सद्धर्म केवल सार है संसार यह निस्सार है॥

जो जन धर्म्म सेवन नहीं करते वह कैसे मूढ नम हैं और दंडी जी कामी पुरुष को उदय भाव के बल से अर्थात् वेद मोहनीय के उदय से यह विचार उत्पन्न हुवा कि अहा हा क्या सुंदर यह कामिनी है, हा ? इस सुरूपा को जो मै जीवित अवस्था मे देखता तो अवश्य इस के साथ भोग विलास करता;

और उस कुत्ते को यह विचार उत्पन्न हुवा कि यह मांस है और यह मेरा खाद्य है परंतु क्या करूं यहां रक्षक बहुत खड़े हैं;

इस प्रकार उन तीनों के हृदय में एक ही पदार्थ को एक ही समय में देखने से उपर्य्युक्त पृथक्२ विचार उत्पन्न

हुए; बस दंडी जी इसही प्रकार संसार के अन्य सब पदार्थ भी सरागीओं को तो राग के उपजाने में और विरागीओं को विराग के उत्पन्न करने में निमित्त कारण हो जाते हैं, परंतु इस से यह बात सिद्ध नहीं हो सकती कि जो पदार्थ वैराग्य भाव के निमित्त कारण होय सो अवश्य वंदनीय होही, तथा जिनोक्त सिद्धान्तों में कहीं ऐसा भी नहीं लिखा है कि जिस का भाव निक्षेप वंदनीय होय उस का स्थापना निक्षेप भी वंदनीय होवे, यदि ऐसा लेख कहीं है तो जिनोक्त बत्तीश सिद्धान्तों का प्रमाण प्रकट करो अन्यथा तुम पाखंडी दंडी स्थापना सत्य कह कह कर भद्रक जीवों को वहिकाय के व्यर्थ पूजनादि में षट्काय की हिंसा कराते हो इस उत्सूत्र भाषण रूप पाप से अवश्य अनंत संसार परि भ्रमण करोगे !!

दूसरे चरण में दंडी जी आप ने लिखा, कि

प्रभु प्रतिमा को पत्थर कहकर मूरख आनंद पाया है

उत्तरः—रे अज्ञ दंडी यह लेख तेरा द्वेष बुद्धि का है, क्यों कि सनातन जैन साधु किसी भी देवादि की प्रतिमा को केवल पत्थर नहीं कहते, किंतु प्रतिमा को प्रतिमा ही कहते हैं, परंतु जो प्रतिमा को ही परमेश्वर मानते हैं और उस प्रतिमा की ही वंदना पूजना करते हैं उन को पाषाण के समान अज्ञ तो अवश्य कहते हैं क्योंकि **ध्येय विषें जो गुण वसें सो हों ध्याता मांहिं, ज्यों जड़की सेवा कियें जड़ बुद्धी ह्वै जाँहिं** अर्थात् ध्येय नाम जिस का ध्यान किया जाय, उस में जो गुण होंय सो ही ध्याता नाम ध्यान करने वाले, में प्रकट होते हैं जैसे जड़ की सेवा करने से जड़ बुद्धि हो जाती है तैसे, अतएव जो प्रतिमा को ही वंदते पूजते हैं सो पाषाण के समान अज्ञानी अवश्य हैं;

और दंडी जी जिनागमों में साधु. साध्वी. श्रावक और श्राविकाओं के लिये प्रतिमा को वंदने पूजने की भगवदाज्ञा भी कहीं नहीं है, यदि तूँ दंडी कुछ अभिमान रखता है तो बत्तीश जिनागमों में प्रतिमा पूजने की भगवदाज्ञा बतला, अन्यथा व्यर्थ कपोल बजाने से क्या सार निकलता है !!

दंडी जो तीसरे चरण में आपने लिखा है कि

चार निक्षेपे शोच जरा मन जिन आगम में गायाहै

उत्तरः—दंडी जी श्री "अनुयोग द्वार" सूत्र में चार नि-क्षेपे ओं का स्वरूप वीतराग ने वर्णन किया है तिस सूत्रा नुसार हम सर्व वस्तुओं के कम से कम चार निक्षेपे मानते हैं, परंतु नाम स्थापना और द्रव्य को वंदनीय नहीं मानते, किंतु तीर्थंकरादि पूज्य पुरुषों के भाव निक्षेप को तो वंद-नीय मानते है, क्यों कि "अनुयोग द्वार" आदि सूत्रों में निक्षेपओं का वर्णन तो किया है परंतु सर्व निक्षेप वंदनीय हैं ऐसा तो जिनागमों मे कहीं कहा है नहीं; यदि तुम दंडी सर्व निक्षेप ओं को ही वंदनीय मानते हो तो क्यों दंडीजी जिन मनुष्यों का माता पितादि कों ने ऋषभ-नमि-शांति तथा महावीर आदि नाम रख दिया है उन मनुष्यों को नाम निक्षेप मान कर तुम दंडी वंदना क्यों नही करतेहो?

क्या उन मनुष्यों को वंदना करने में तुम दंडीओं को लज्जा आती है?

पुनः तुम दंडी ऐसा भी नहीं कह सकते हो कि ऋष-भादि नाम वाले मनुष्य नाम निक्षेप नहीं हैं;

क्यों कि श्री "अनुयोग द्वार" सूत्रानुसार वह नाम

निक्षेप अवश्य है देखो अनुयोग द्वार सूत्र में नाम निक्षेप का स्वरूप ऐसा कहा है कि जिस जीव का वा जिन जीवों का, जिस अजीव का-वा जिन अजीवों का. और जिस तदुभय का-वा-जिनतदुभयों का, आवश्यक ऐसा नाम रख लेवें वह नामावश्यक है,

अर्थात् वह आवश्यक का नाम निक्षेप है. और आगे भी इसी उदाहरण की भलामण है;

देखो अनुयोग द्वार सूत्र का वह पाठ यह है

से किंतं नामा वस्सयं ?

नामा वस्सयं जस्सणं जीवस्स वा अ जीवस्स वा जीवा णं वा अजीवा णं वा तदुभयस्स वा तदुभया णं या आवस्सए त्ति नामकज्जति; सेतं नामा वस्सयं;

अब ढंडी जी यदि बुद्धि होय तो तुमही विचार करो कि अनुयोग द्वार सूत्र में वीतराग ने नाम निक्षेप का उपर्युक्त स्वरूप वर्णन किया है उस के अनुसार ऋषभ देवादि नाम वाले सामान्य मनुष्य ऋषभ देव भगवानके

नाम निक्षेप हैं या नहीं?

यदि हैं तो तुम क्यों नहीं वंदते हो ?

दंडी जी जरा हृदय से भी विचारो और दूसरे बुद्धिमानों का भी कहना मानो, नितान्त तीश लक्षण के धनी मत वनो!!

अष्टम छल छंद के पहिले दूसरे चरण में तू लिखता है कि

झज्झा-झूठ बतावें केता जेता तैंने गाया है
तीर्थंकर गणधर पूरव धर सबको धब्बा लगाया है

उत्तरः-रे दंभी दंडी यह लेख भी तेरा महा मृषा है, रे जैना भाष दंडी जो तुझ को सत्य लेख भी झूठे प्रतीत होते हैं सो तेरे मिथ्यात्त्व मोह का उदय है अतएव तुझै विपरीत भासै है, इस का हम क्या करें ?

तूं अपने औंधे भाग्य पर हाथ फेर;

रे दंडी जो तूँने मिथ्या आक्षेप किये हैं उन का तो यथार्थ उत्तर हम इस दंडी दंभ दर्पण में तुझ को क्रम से देते हैं, परंतु जो तेरे पेटैं पाप भरा हुवा है उस का कटु फल तो तुँहीं भोगेगा;

और रे दंडी ऐसा तो जननी ने कोई जना ही नहीं है कि जो तीर्थंकर गणधरादि उत्तम पुरुषों को धब्बा लगावे, परंतु यह अवश्य है कि तुम सवांग मत के धारक दंडीओं ने "प्रति क्रमण" सूत्र में चउविहार उपवास में भी मूत पीना छपवा कर अवश्य पवित्र जैन धर्म्म के नाम पर धब्बा लगाया है !!

तीसरे चरण में दंडी तूं लिखता है कि

मुख पर पाटा कान में डोरा दैत्यसा रूप बनाया है

उत्तरः-दंडी जी यह लेख लिख कर तो तुम ने अपनी नीच बुद्धि का पूर्ण परिचय दिया है परन्तु हम तो दैत्य रूप के कहे का बुरा ही नहीं मानते; क्यों कि मुनिराजों के शोभनीय वेष को देख कर जो दैत्य नाम मंद बुद्धि मिथ्यात्वी हैं वह तो मुनिराजों को दैत्य रूप ही कहा करते हैं; जैसे कि श्री "उत्तराध्ययन" सूत्र के द्वादश में अध्ययन में पूज्यपाद हर केशी मुनि के प्रति मंद बुद्धी दैत्यों ने कहा है कि "**कयरे आ गच्छइ दित्त रूवे**" तो दंडी जी तुम्हारा ही इस में क्या खोट है !

अर्थात् सु साधुओं के प्रति मिथ्यात्वीओं के मलिन मुख से सहसा ऐसे वचन निकल ही पड़ते हैं अतएव सु

साधु उन शब्दोंसे विचलित भी नहीं होते हैं, एक सत्कवि ने कहा भी है कि,

क्या श्वान शब्द पर ध्यान गजेन्द्र लगाते?
कविराज आप के चरित्र न जाने जाते ?

अब रे अज्ञानी दंडी मुख पर मुख वस्त्रि का बांधना हम तेरे ही मान्य ग्रंथों से तुझे सिद्ध कर दिखाते हैं, सो तू अपने हिये लिलार की आंख खोल कर तेरे ही मान्य ग्रंथों के प्रमाण रूप भानु को देख;

देख तेरे मान्य "महा निशीथ" सूत्र के सप्तम अध्ययन में प्रकट पने यह पाठ लिखा है कि

कन्नोट्ठियाए वा मुहणं तगेण वा विणा
इरियं पडिक्कमे मिच्छुक्कडं पुरिमंद्ढं वा

अस्य संस्कृत टीका

कर्णो स्थितया मुख पोति कया इति विशेष्य गम्यम्
मुखानंतकेन वा विना ईर्य्यां । प्रतिक्रामेन्
मिथ्या दुष्कृतम् पुरिमार्द्धंवा प्रायश्चित्तम्

भाषार्थ यह है कि

कान में घाली हुई मुख वास्त्रिका के विना अथवा विलकुल मुखान्नन्तक (मुख वस्त्रि का) के विना ईर्य्या पडिक्कमण करे तो मिथ्यादुष्कृत अथवा पुरिमार्द्ध प्रायश्चित्त का भागी होताहै,

अब कहिये दंडी जी उपर्य्युक्त महा निशीथ सूत्र के प्रमाण से मुख पर मुख वस्त्रि का बांधना स्पष्ट सिद्ध हुवा या अब भी कुछ कसर रही !

पुनः देवसूरि जी अपने "समाचारी" ग्रथ में मुख पर मुख वस्त्रिका बांधने की तुम दंडीओं को इस प्रकार स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि

मुख वास्त्रिकां प्रति लेख्य मुखे वध्वा, प्रति लेखयति रजोहरणम् ;

इस का भाषार्थ यह है

मुह पत्ती की पडिलेहना कर के उस को मुंह से बांध कर रजोहरण की पडिलेहना करना

इत्यादि तुम्हारे ही-मान्य अनेक ग्रंथों के प्रमाणों से मुख पर मुख वस्त्रि का का बाँधना स्पष्ट तया सिद्ध है;

और रे दंभी दृडी " मुख वास्त्रि का " वास्तव में कहते ही उस से हैं जो मुख पर वांधी जाय, देख शाह भीमसिंह माणेक के छपाये द्वितीया वृत्ती का हित सिक्षागो रास" पृष्ठ ३८ पंक्ति १६ मी से तीसरे और चौथे दोहा को जिन में तेरे ही साधर्मी श्रावक ऋषभदास जी रूपका लकार में लिखते हैं कि

मुखें बांधिते मुंह पत्ति, हेठें पाठो धारि ॥
अति हेठि दाढी थई, जोतर गले निवारि ॥३॥
एक काने धज सम कही, खंभे पछेड़ी ठाम ॥
केडें खोशी कोथली, नावे पुराय ने काम ॥ ४॥

अर्थात् मुख पर वांधी जाय वही मुख वस्त्रिका है अरु उसी से धर्म का कार्य्य [जीवों की यत्ना] होवे है; और यदि कुछ नीची होवे, वह पाटा के समान होती है. विशेष नीची होवे, वह डाढ़ी के समान होती है.
गले में होवे वह जूवा (झूसर) के समान होती है ॥ ३॥
एक कान में लटकावे वह ध्वजा के समान होती है.
स्कंध पै रक्खी होवे, वह जाने मानों पछेवड़ी है.

ऐसे ही कटि वस्त्र में खोशी होवे तो, वह कोथली के

समान दीख पड़ती है और न मुख मे इतर स्थानों की मुख वस्त्रिका पुण्य के काम में आती है ॥ ४ ॥

वाह दंडी जी यह तो तुम्हारे ही अनुयायीने तुम्हारी अनोखे ढंग से हंसी उडाई है ?

पुनः रे दंडी जैनेतर ग्रंथों में भी ऐसा लेख है कि जैन साधु वही हैं जो मुख पर मुख वास्त्रि का धारण करतेहैं अर्थात् बांधते है, देख मथमा वृत्ति के 'शिव पुराण की २१ मी अध्याय का २५ मा श्लोक

हस्ते पात्र दधानाश्च तुण्डे वस्त्रस्य धार काः
मलिना न्येव वासांसि धारयन्तोल्प भाषिणः॥२५॥

इस का भावार्थ यह है कि

हाथ में पात्र धारण करने वाले, मुख पर वस्त्र धारण करने वाले, मलिन वस्त्र धारण करने वाले, और थोड़े वोलने वाले, जैन साधु होते है॥२५॥

और उक्त वात को ही पुष्टि देने के लिये रे दंडी तेरे ही मान्य गुरु वर्य्य लब्धि विजय जी दंडी ने "हरि वल मच्छी नो रास" जो कि शाह भीमसिंह माणेक का छपाया है उस की पृष्ठ ७२ पंक्ति तीसरी के ५ मे दोहा में लिखते हैं कि

सुल्लभ वोधी जीवड़ा, मांडे निज खट कर्म्म॥
साधू जन मुख मोमती, वांधी है जिन धर्म॥५॥

अर्थात् सूर्य्योदय होने पर सुलभ वोधी जीव जो हैं तिन्होंने निज के करने योग्य षट् कर्म्म करने में उद्यम किया है, और साधुओं ने जिनोक्त मर्य्यादा से मुख वास्त्रिका की प्रति लेपना प्रमार्जना कर के मुख वस्त्रिका मुख पर वांधी है, यह जिन धर्म्म है ॥ ५ ॥

रे दंडी शिव पुराण के और हरि वल मच्छी के रास के प्रमाण से जैन साधुओं को मुख पर मुख वस्त्रिका वांधनी स्पष्ट सिद्ध है तो भी तुम दंडी हठ से मुख पर मुख वस्त्रिका नहीं वाधते हो अतएव तुम जैन नहीं, किंतु जैना भास हो;

अरु रे दंडी उपर्य्युक्त तुम्हारे ही मान्य अनेक ग्रंथों के प्रमाणों से तथा जैने तर ग्रंथों के प्रमाणों से मुख वास्त्रिका मुख पर वांधना स्पष्ट सिद्ध है, परंतु तू महा अज्ञान दंडी अपने ग्रंथों का भी जान कार नहीं है, और ना जैनतर ग्रंथों का जान कार है, यदि तू जानकार होता तो जिनोक्त उपकरण के प्रति मुख पर पाटा इत्यादि अप शब्दों का उच्चारण नहीं करता ?

दंडी जी देखो वडे २ अंग्रेज विद्वान भी इस विषय पर क्या लिखते हैं ॥

The religions of the world by John Murdock L. L. D 1902 Page 128 —

" The yati has to lead a life of continence he should wear a thin cloth over his mouth to prevent insects from flying in to it .

Chambers Encyclopaedia Volume VI London 1906, Page 268 —

' The yati has to lead the life of abstinence and continence he should wear a thin cloth over his mouth &c '

Mr A F Rudolf Hoernle Ph D Tubingen in his English translation of Uvasagadasao, Vol. II Page 51 Note No 144. write

" Text muhapatti, Skr Mukha Patri 'lit a leaf for the mouth ' a small piece of cloth suspended over the mouth to protect it against the entrance of any living thing.

आशा है कि दंडी जी इन प्रमाणों को देखकर अपना हट छोड़ देंगे और सनातन जैन धर्म के सच्चे अनुयाई होकर मुख वस्त्रिका धारण करने लगेंगे ॥

नव मे छल छंद के तीन चरणों में तूं लिखता है कि

टट्टा-टटोल देख आंखों से जिन गण धर फर माया है, सतरां भेद प्रभु पूजा का रायपसेणी गाया है;

हित सुख जोग मोक्ष भव साथे पूजा फल वतलाया है;

उत्तरः-रे दंभी दंडी क्या तुझ से ऐसे २ मिथ्या लेख लिखना ही आता है या किसी कुगुरु ने तुझे सत्य लेख लिखने का प्रत्याख्यान करा दिया है? क्यों कि उपर्युक्त लेख तेरा नितान्त मिथ्या है;

रे हिंसा धर्मी दंडी "राज प्रश्नाय" सूत्र में जिन गण धर ने कहीं भी सतरां भेदी प्रभु पूजा का फल हित सुखादि वर्णन नहीं किया है;

रे उत्सूत्र भाषी दंडी कुछ तो झूठ लिखने से डरा कर

दशम छल छंद के तीन चरणों में तूं लिखता है कि

ठठ्ठा-ठीक नजर नहीं आवे सूत्र उबाइ वताया है, अंबड श्रावक के अधिकारे क्या जिनवर फर

मायाहै, चैत्य शब्द का अर्थ मरोडी मन भाया गाया है;

उत्तरः-रे दंडी यह जो तेंने मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से लिखा है, सो नितान्त मिथ्या लिखा है:

रे दंडी " उववाई " सूत्र में अंबड श्रावक का अधिकार जैसा जिनेन्द्र देव ने वर्णन किया है वैसा ही हम मानते हैं. और सूत्रार्थ भी हम को यथार्थ भासता है, तुझ निरक्षर दंडी को कौनसा विशेष ज्ञान हो गया है! सो तू व्यर्थ कपोल बजाता है :

रे हिंसा धर्मी हटी दंडी तुझे मिथ्यात्व के उदय से सूत्र का विपरीत अर्थ भासता है सो तेरे पाप कर्म का उदय है, और उस पाप कर्म्म का फल तुझे अवश्य भोगना ही पडेगा;

तथा चैत्य शब्द का अर्थ भी हम मरोड़ते नहीं है और अपने मन भाया भी नहीं करते हैं, किंतु व्याकरण, कोष, जैन सिद्धान्त तथा जैने तर ग्रंथों में जो चैत्य शब्द के अर्थ करे हैं उन के अनुसार ही हम चैत्य शब्द के अर्थ प्रकरणानुकूल करते हैं, परंतु हम, तुम दंडीओं की तरह जैन सिद्धान्त तथा जैनेतर ग्रंथों में चैत्य शब्द के जो अनेक अर्थ किये है उन सर्व अर्थो को अमान्य कर के केवल अपने स्वारथ के लिये तीन ही अर्थ नहीं करते है

देखो दंडी जी तुम्हारे गुरु दंडी आनंद विजय जी ने हिंदी "सम्यक्त्व शल्योद्धार" की पृष्ठ २४३ की पंक्ति ६ से ऐसा लिखा है कि

जिन मंदिर और जिन प्रतिमा को 'चैत्य' कहा है और चौतरे बन्ध वृक्ष का नाम 'चैत्य' कहा है इन के उपरान्त और किसी वस्तु का नाम चैत्य नहीं कहा है।

वाह! दंडी जी धन्य है तुम को और तुम्हारे सत्य लेखक दंडी जी आनंद विजय जी को जिन्होंने सर्व कोष तथा ग्रंथकारो के किये हुए चैत्य शब्द के अनेक अर्थों को अमान्य करके केवल ऊपर लिखे हुए तीन ही अर्थ माने

यदि दंडी जी आप चैत्य शब्द के तीन अर्थ भी न मानों, और केवल "चैत्य शब्द का एक जिन प्रतिमा ही अर्थ है, चैत्य शब्द का एक जिन प्रतिमा ही अर्थ है" यों कहर कर नाचो तो क्या तुम हठ भरे महा शठ नरों को कोई समझा सकता है ? कदापि नहीं;

तथापि दंडी जी हम तुम्हारे पूज्य गुरु आनंद विजय जी दंडी की पाण्डित्यता तुम्हे दिखाते है;

देखो दंडी जी तुम्हारे गुरु आनंद विजय जी हिंदी सम्यक्त्व शल्यो० की पृष्ठ २४३ की पंक्ति ६ से येम लिखते हैं कि [जिन मंदिर और जिन प्रतिमा को 'चैत्य' कहा है और चौतरे वन्ध वृक्ष का नाम 'चैत्य' कहा है इनके उपरांत और किसी वस्तु का नाम चैत्य नहीं कहा है] परंतु देखो "शब्दस्तोम महा निधि कोष" १० १८१४ के छपे हुए की पृष्ठ १६२ को जिस में चैत्य शब्द के १० अर्थ करे हैं यथा

ग्रामादि प्रसिद्धे महा वृक्षे, देवा वासे जनानां सभास्थ तरौ, बुद्ध भेदे, आयतने, चिता चिन्हे, जन सभायां, यज्ञ स्थाने, जनानां विश्राम स्थाने, देव स्थाने च,

तथा जिनोक्त सिद्धांतों के अनुसार चैत्य शब्द का ग्यारहमा अर्थ बाग है देखो 'उत्तराध्ययन" सूत्र के वीशमे अध्ययन की दूसरी गाथा का चतुर्थ चरण

"मंडि कुच्छंसि चेइए ॥ २ ॥

इत्यादि और भी चैत्य शब्द के अनेक अर्थ हैं तो

भी तुम्हारे गुरु ढंडी आनंद विजय जी ने पक्षपात के वश अपने मन माने तीन ही अर्थ माने. ढंडी जी क्या साक्षर पुरुषों का यही काम होता है कि अपना मन माना अर्थ तो मानना और दूसरों का किया हुआ यदि सत्य अर्थ होय तो भी न मानना, हमारी समझ से तो जो मनुष्य साक्षर बन के विपरीत कार्य्य करे वह साक्षर नहीं किंतु रा···स है किसी कविवरने भी कहा है कि **साक्षरा विपरीता श्चेद्राक्षसा एव केवलम्** अस्तु

तथा तुम ढंडी बड़े गर्व्व से यह बात कहते और लिखते भी हो कि चैत्य शब्द का अर्थ ज्ञान तथा साधु तो होय ही नहीं सकता, परंतु, यह तुम्हारा कहना और लिखना नितान्त मिथ्या है, क्योंकि चैत्य शब्द का अर्थ ज्ञान और साधु हो सकता है देखो "समवायांग" जी सूत्र में स्पष्ट पणे गणधर महाराज ने ज्ञान को चैत्य कर के बोला है,

एएसिं चउव्वीसाए तित्थगराणं चउव्वीसं चेइय रुक्खा होत्था

इस का भावार्थ यह है कि इन चौवीश तीर्थ करों के चौवीश चैत्य व्रक्ष सरूपे हैं

ढंडी जी इस कथन का यह परमार्थ है कि जिसं वृक्ष

के नीचे तीर्थ करो को केवल ज्ञान उत्पन्न हुवा तिस केवल ज्ञान [चैत्य] की ही नेश्राय से तिस वृक्ष को चैत्य वृक्ष कहा है, जैसे ईषत्प्राग्भारा नामक पृथ्वी सिद्धों के निकट होने से 'सिद्ध सिला' कहलाती है तैसे

तथारे पक्षपाती दंडी चैत्य शब्द का साधु और ज्ञान अर्थ तो वादि गर्व गालक प्रवर पंडित श्री मज्ज्येष्ठ मल जी महाराज ने श्री सम्यक्तव सार के प्रथम भाग में अनेक जिनोक्त सिद्धान्तों के प्रबल प्रमाणों से २४ बोलों कर के भली भांति सिद्ध कर दिया है

तथापि अब तुम्हारी विशेष संतुष्टि के लिये चैत्य शब्द का ज्ञान तथा साधु अर्थ हम उस प्राचीन ग्रंथ के प्रमाण से सिद्ध करते हैं कि जिस ग्रंथ के बनने के समय में तुम्हारे इस पीत वस्त्र धारक दंडी मत का जन्म भी नहीं हुआ था अर्थात् जिस ग्रंथ को बने हुए बहुत ही वर्ष होगये, दंडी जी उस ग्रंथ का नाम "षट् पाहुड" है, और उसकी रचना दिगम्बराम्नाय के एक प्रसिद्ध आचार्य "कुन्द कुन्द" जी ने करी है, जिन के विषय में दिगम्बराम्नाय के ग्रंथों में लिखा है कि 'हुवे न हैं, न होयगें मुनिन्द कुन्द कुन्द से" उस षट् पाहुड के चौथे बोध

पाहुड की अष्टमी और नवमी गाथा मे स्पष्ट तया चैत्य शब्द का ज्ञान और साधु अर्थ किया है;

देखो सन १९१० मे बाबू सूरजभान वकील के छपाये हुए "षट्पाहुड" की पृष्ठ २६ की पंक्ति २६ से

वुद्धं जं वोहन्तो । अप्पाणं वेइयाइ अण्णंच ॥
पंच महव्वय सुद्धं । णा ण मयं जाण चेदि हरं॥८

संस्कृत छाया

शुद्धं यत् वोधयन आत्मानं वेति अन्यं च । पंच महा व्रत शुद्धं ज्ञान मयं जानीहि चैत्य ग्रहम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जो ज्ञान स्वरूप शुद्ध आत्मा को जानता हुवा अन्य जीवों को भी जानता है तथा पंच महा व्रतों कर शुद्ध है ऐसे ज्ञान मई मुनि को तुम चैत्य ग्रह जानो ॥ ८ ॥

रे ढंढी क्या अब भी तुझे चैत्य शब्द के ज्ञान और साधु अर्थ होने में कुछ सन्देह है ?

यदि अब भी कुछ सन्देह है तो पुनः देख षट्पाहुड की पृष्ठ ३७ की पंक्ति ६ से उक्त ही गाथा का भावार्थ

भावार्थ—जिस में स्वपर का ज्ञाता वसे है वेही चैत्यालय हैं। ऐसे मुनि को चैत्य ग्रह कहते हैं

पुनः देख पृष्ठ ३७ की पंक्ति ८ से

चेइय वंधं मोक्खं। दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्य॥
चेइ हरो जिण मग्गे। छक्काय हियं भणियं॥६॥

संस्कृत छाया

चैत्यं वंधं मोक्षं दुक्खं सुखं च अर्पयतः। चैत्य ग्रहं जिन मार्गे षट्काय हितं करं भणितम्॥ ६॥

अर्थ-बंध मोक्ष, और दुख सुख में पड़े हुवे छैकाय के जीवों का जो हित करने वाला है उस को जैन शास्त्र में चैत्य ग्रह कहा है ॥६॥

पुनः देख पृष्ठ ३७ की पंक्ति १४ से उक्त ही गाथा का भावार्थ

भावार्थ-चैत्य नाम आत्मा का है वह वंध मोक्ष तथा इन के फल दुःख सुख को प्राप्त करता है। उस का शरीर जव षट्काय के जीवों का रक्षक होता है तबही उसको चैत्य

यह (मुनि-तपस्वी-व्रती) कहते हैं ॥ ६ ॥

पुनः देख पृष्ठ ३७ की पंक्ति १८ से पंक्ति १६ मीं तक के स्पष्टी करण को

अथवा चैत्य नाम शुद्धात्मा का है। उपचार से परमौदारिक शरीर सहित को भी चैत्य कहते हैं इत्यादि

और तुम दंडी श्री उपाशक दशांग में आनंद श्रावक के वर्णन में, तथा श्री उववाई सूत्र में अंवड श्रावक के वर्णन विषें जो चैत्य शब्द का प्रतिमा अर्थ सिद्ध करने के लिये "अर्थापत्ति' से अर्थ लेते हो, और तुम्हारे गुरु दंडी आनंद विजय जी ने भी लिया है, सो वस्तुतः नितान्त मिथ्या; और उत्सूत्र प्ररूपणा रूप है; क्यों कि श्री अनुयोग द्वार जी सूत्र की टीका में सूत्र के बत्तीश दूषण कहे हैं; उन में अर्थापत्ति से अर्थ लेना है सो सूत्र का २६ वॉ दूषण है

देखो राय धनपतसिंह बहादुर मकसूदाबाद निवासी के छपाये हुए "अनुयोग द्वार" सूत्र की टीका की पृष्ठ ६१६ पंक्ति ७ में

' अत्था वत्ती दोसो २६ '

पुनः देखो उपर्य्युक्त सूत्र की पृष्ठ ६१७ की पंक्ति ११ मी से उक्त २६ वे दूषण का स्पष्टी करण

यत्रार्थां पत्या निष्ट मापताति तत्रार्था पत्ति दोषो यथा गृह कुक्कुटो न हंतव्य इत्युक्ते ऽर्था पत्या शेष घातो ऽदुष्ट इत्या पताति;

रे दंडीओ खेदहै कि तुम अपने तुच्छ मन्तव्य के सिद्ध करने को गणधर रचित सिद्धान्तों को भी दूषण युक्त बनाते हो ?

कुछ तो अमित संसार परि भ्रमण से डरो;

तथा तुम दंडी दुर्ज्जनता से ऐसी भी कुतर्क करते हो कि यदि चैत्य शब्द का अर्थ साधु होवे तो चैत्य शब्द स्त्री लिंगमें तो बोलाही नहीं जाताहै तो साध्वीको क्या कहना

दंडी जी यह कुतर्क भी तुम्हारी कुमति जन्य और अल्पज्ञ पणे की है; क्यों कि प्राकृत में यह नियम नहीं है कि लिंग का व्यतय न हो; अर्थात् जो शब्द पुलिंग वाची हो सो स्त्री लिंग वाची तथा नपुंसक लिंग वाची न हो,

अपितु प्राकृत मे तो लिंगेपुते पु भवति काचिदत्र शास्त्रे यदव्यत्ययस्तु इस " पद्य प्राकृत व्याकरण " के प्रमाणानुसार कहीं लिंग का व्यत्यय भी हो जाता है; अर्थात् जो शब्द पुल्लिग वाची होता है उस का प्रयोग स्त्री लिग तथा नपुंसकलिंग में भी हो जाता है. ऐसे ही स्त्री लिंग वाची शब्द का भी प्रयोग पुल्लिंग में हो जाता है जैसे कि गणधर महाराज ने श्री " ज्ञाता धर्म कथांग" जी के अष्टमाध्ययन मे "मल्ली" शब्द स्त्री लिंग वाची है; तो भी तिस का पुल्लिग में प्रयोग किया है यथा:- मल्लिस्स अरहा दुविहा अंत गड भूमी होत्था यदि ढंडी जी प्राकृत में लिग का व्यत्यय न होता तो गणधर महाराज " मलिस्स " ऐसा उच्चारण नहीं करते किंतु "मल्लिए' ऐसा कहते. तथा रे ढंडी ", मधुकर " शब्द पुल्लिग वाची है तो भी आचार्यों ने " कल्प सूत्र में पचम पुष्प माला के स्वप्नाधिकार विषे " मधुकर ' शब्द का प्रयोग स्त्री लिग में " महुयरि " ऐसा किया है

अतएव यह स्पष्ट सिद्ध है कि प्राकृत में लिग का व्यत्यय भी होजाता है; परन्तु तुम ढंडी प्राय: आर्ष वचनों के अनभिज्ञ हो अतएव व्यर्थ कुतर्क करते हो !!

ग्यारहमें छल छंद में दंभी दंडी तूं लिखता है कि
डड्डा-डर नहीं रहा किसी का साचा पाठ
छिपाया है। अंग सात में आनंद श्रावक के
अधिकारे गाया है। पाठ खुलासा देख अकल
के अंधे नजर नहीं आया है ॥

उत्तरः-रे दंभी दंडी यह जो तूंने कलुप में क्लेशित हो
कर लेख लिखा है सो नितान्त मिथ्या लिखा है;

रे दंडी पर भव का डर तो तुझ को और तेरे पूर्वजों
को नहीं रहा कि जो सप्तमांग में आनंद श्रावक के अधि-
कार में अण्णा उत्थिय परिग्गहियाणि इत्यादि
पाठ में अरिहंतादि शब्द प्रक्षेप कर के अपने तुच्छ मंत-
व्य (हिंसामयी धर्म्म) को पुष्ट करना चाहा है, सो हम
इस दंडी दंभ दर्पण में तेरे पंचम छंद के उत्तर में सप्रमाण
लिख कर सिद्ध कर चुके हैं; अतएव पिष्ट पेपण समझ कर
यहां नही लिखते हैं;

तथा दंडी सप्तमांग जो "उपाशक दशांग" है तिस
विषें आनंद श्रावक के अधिकार में तेरा मंतव्य जो मूर्त्ति
पूजन करने का है तिस की गंध भी नहीं है; यदि सप्त-

मांग विषें आनंद श्रावक के अधिकार में मूर्त्ति पूजन करने का " खुलासा पाठ है तो पंडित मानी ढंडी जी लिख कर प्रकट करो अन्यथा तुम ढंडी महा मृषा वादी तो हो ही;

और केवल अक्ल का अंधा ही नहीं, किन्तु तूं ने-त्रांध भी प्रतीत होता है जो तूंने सप्तमांग को देखे विना ही ऐसा लिख डाला कि ' सप्तमांग में आनंद श्रावक के अधिकार मे पाठ खुलासा देख "

रे ढंडी किस वर्णन का खुलासा पाठ तूं हम को दिखलाता है ?

प्रथम तूं तो देख ले ?

वाह ? ढंडी धन्य है तुझ को, तूंने तो **स्वयं नष्ट परान्नाशयति** इस कहावत को पूर्ण तया चरितार्थ की है अस्तु: ??

रे ढंडी बारहमें छल छंद में तूं लिखता है कि

ढढ्ढा-ढुंढिया नाम धराया ढुंढ ढुंढ मन भाया है;परमारथ को भूल ढुंढ नहीं मूढ गूढ को पाया है, झूंठ कपट शठ नाटक कर के जग सारा भरमाया है।

उत्तरः-रे दंभी दंडी यह निःसार लेख लिख कर तूंने व्यर्थ कागद काला किया है, हम इस का इतना ही उत्तर लिखना समुचित समझते हैं कि तूं दंडी महा अज्ञानी है कि जो तूं सु साधुओं के प्रति व्यर्थ अपशब्द बोलता है और भद्रक जीवों को तूं अपने दंभ रूप फंद में फसाने का प्रयत्न करता है; परंतु रे दुर्वादी दंडी स्मरण रख कि जो कोई अपक्ष पाती सज्जन हमारे रचित इस दंडी दंभ दर्पण को आद्योपान्त पढ लेवेगा वह तो तेरे दंभ रूप फंद को इस प्रकार तोड़ देवेगा जैसे गजेन्द्र मृणाल को तोड़ देता है

रे दुर्म्मुखी दंडी तूं यह तो बतला कि तुझे क्या परमार्थ पाया है

रे दंभी दंडी क्या मूर्त्ति पूजन में अगणित त्रश स्थावर जीवों की हिंसा करना और तिस में धर्म्म मानना यही जिनागमों का गूढार्थ तैंने समझा है !

वाह ! दंडी धन्य है तेरे निरक्षर भट्टाचार्य्य गुरु को कि जिसने तुझ को यह हिंसा मयी धर्म्म मानने की कुमति प्रदान की !!

रे कुटिल मती दंडी तेरहमे छल छंद मे तूं लिखता है कि

तत्ता-तीर्थ भुलाये सारे प्रभु का धाम भुलाया

है; अपने आप तीर्थ बन बैठे अपना धाम मनाया है; वांदे पूजे माने मानता सेवक के मन भाया है

उत्तर: रे विवेक शून्य ढंडी तेने यह लेख केवल द्वेष बुद्धि से मिथ्या लिखा है; क्योंकि हम ने तीर्थ करों के किये हुए साधु-साध्वी-श्रावक-और श्राविका रूप जो चार तीर्थ है उन में से कोईसा भी तीर्थ नहीं भुलाया है; किंतु हम तीर्थ कर कृत तीर्थों की शत्यनुसार यथा योग्य पर्य्युपाशना करतेहैं और अन्य भव्य जीवोंसे भी करातेहैं;

और रे मूढ ढंडी लोगग्ग पइट्ठिया सिद्धा इस वचन से प्रभु का धाम जो (लोकाग्र) सिद्ध क्षेत्र है. उस को भी हम ने नहीं भुलाया है; किंतु "संस्थान विचय" नामक धर्म्म ध्यान के चतुर्थ पादका जब स्वरूप चितन तथा वर्णन करते हैं तब उस प्रभु के धाम का भी भली भांति से चिंतन तथा प्रति पादन करते है;

परंतु तुझ ढंडी के माने हुऐ कुतीर्थों को और कल्पित धाम जो सत्रुंजयादि हैं उन को तो हम ने अवश्य भुलाये है; क्यों कि उन को तीर्थ मानने का और तिन के स्मरण करने का वर्णन-जिनोक्त वत्तीश सिद्धांतों में कहीं भी नहीं है

रे मूढ दंडी भगवन्त वीर प्रभु ने तो श्री " भगवती " जी सूत्र के वीस मे शतक के अष्टमो देश में श्री गौतम स्वामी के पूछने पर श्री संघ को तीर्थ कहा है और उसके चार भेद बतलाये है यथा

तित्थं भंते तित्थं ? तित्थ करे तित्थं ?
गोयमा, अरहा ताव नियमं तित्थगरे.
तित्थं पुण चाउ वण्णा इण्णो समण संघे तं-
जहाः-समणा समणी ओ, सावगा, सावियाओ

इस का भावार्थ यह है कि, गौतम भगवान् सविनय वीर प्रभु से यह प्रश्न करते हैं;

हे पूज्य, तीर्थ जो चतुर्विध संघ रूप है, उसे तीर्थ कहिए अथवा तीर्थ करको. तीर्थ कहिये ?

गौतम स्वामी के इस प्रश्न का भगवान वीर प्रभु ने यह उत्तर फरमाया कि;

हे गौतम अरहंत तो प्रथम नियमा तीर्थ कर हैं-तीर्थ प्रर्वतावते हैं, इस हेतु से परंतु तीर्थ नहीं,

तीर्थ तो चार वर्ण हैं जिस में ऐसा क्षमादि गुणों कर के पूर्ण स्मरण संघ है, तिस के चार प्रकार है.

सो चार भेद यह हैं कि:-साधु. साध्वी,श्रावक और श्राविका.

पुनःइसी प्रकार संघ रूप तीर्थ के चार भेद श्री "स्थानांग" जी सूत्र के चतुर्थ स्थान में वीर प्रभु ने फरमाये हैं

चउव्विहे,समण संघे-पण्णत्ते;
तंजहाःसमणा,समणी ओ,सावगा,साविवाओ,

एवं जिनोक्त सिद्धान्तों के विषें तो साधु. साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध के भाव तीर्थ वर्णन किये है,

तथा रे दंडी जम्बूद्वीप नामा द्वीप के इस भारत वर्ष क्षेत्र में द्रव्य तीर्थ भी श्री "स्थानांग" जी सूत्र के तृतीय स्थान में मागध वरदाम और प्रभास ये तीन ही तीर्थ वर्णन किये हैं यथाः-

तओ, तित्था-पण् ण त्ता;
तं जहाः-मागहे, वरदामे, पभासे.

रे हटी दंडी इन के अतिरिक्त और कोई भी तीर्थ इस भारत वर्ष में भगवन्तों ने नहीं कहे

यदि जिनोक्त बत्तीश सिद्धांतों में कहे होवे तो लेख

द्वारा प्रकट कर, परंतु तेरे सावद्या चार्य्यो केकपोल कल्पित ग्रंथों का प्रमाण हम नहीं मानेंगे,

रे अज्ञानी ढंडी,हमही नही किंतु तेरे सावद्या चार्य्यों के रचित ग्रंथों (थोथा पोथा ओं) मे ऐसी अघटित वातें लिखी हैं कि जिन को कोई भी आर्य्य बुद्धि मान नहीं मान सकता; जैसे कि शत्रुंजय पहाड का माहात्मय वर्णन करते हुए तुम्हारे सावद्या चार्य्य लिखते है कि:-

से तुंजे पुंडरी ओ सिद्धो मुणि कोडि पंच सं जुत्तो
चित्तस्स पुणिण माए सो भणइ तेण पुंडरीओ॥१॥

इस का भावार्थ यह है कि चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिवस शत्रुंजय पर्वत के ऊपर ऋषभ देव भगवान के प्रथम गणधर पुंडरीक जी नाम के, पांच करोड मुनियों के साथ सिद्ध हुए अर्थात् मोक्ष को प्राप्त भये। अतएव शत्रुंजय पर्वत का नाम "पुडरीक" गिरी हुआ ॥ १ ॥

अव कहिये दंडी जी क्या इस तुम्हारे सावद्याचार्य्यों के अनघटित कथन को कोई भी प्रेक्षावान् बुद्धिमान् मान सकता है ?

कदापि नहीं मान सकता, क्योंकि तीर्थ कर के परि-

वार से गणधर का परिवार विशेष नहीं हो सकता, जैसे वृक्ष के स्कंध से साखा मोटी नहीं होती तैसे, तो रे अज्ञानी ढंडी श्री ऋषभ देव भगवान के तो सूत्र श्री "जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ती" में उत्कृष्ट चौराशी हज़ार ही साधु कहे हैं, यथा

उसभ स्स णं अरहउ कोसालि य स्स, उसभे ण पामुक्खा ओ चुलसी इं समण साहस्सी ओ-उक्कोसिया-समण संपया होत्था.

तब उन के प्रथम गणधर पुंडरीक जी के साथ पांच करोड़ साधु मुक्ति जाने वाले कहाँ से आये ?

और रे विचार शून्य ढंडी, क्या पुंडरीक जी गणधर के दो, चार अर्ब साधु थे कि जिन में से पांच करोड़ साधु तो एक ही साथ मोक्ष हो गये अतएव यह बात नितान्त मिथ्या ही प्रतीत होती है.

यद्यपि उत्सूत्र भाषी ढंडी आनंद विजय जी ने स्व कृत जैन तत्वादर्श की पृष्ठ ३०३ में उपर्युक्त अघटित वर्णन को लोक मान्य कराने की इच्छा से इस "कोटि" शब्द को संज्ञांतर सिद्ध करने की मिथ्या चेष्टा की है परंतु उन की यह मिथ्या चेष्टा निरर्थक ही है; क्यों कि

इन के ही पूर्वज ढूंढी हीर सूरि जी ने यह बात स्पष्ट सिद्ध कर दी है कि पुंडरीक जी गणधर के साथ पांच कोटि, तथा पांडवों के साथ वीश कोटि मुनि मोक्ष गये हैं तहां कोटि शब्द का अर्थ संज्ञांतर वाचक नहीं लेना किंतु संख्या संज्ञक शत लक्ष का एक कोटि लेना जरा आंख खोल कर देखो धन विजय जी कृत " चतुर्थस्तुति निर्णय शंकोद्धार " की पृष्ठ १८२ पंक्ति १० मी से:-

श्री शत्रुंजय ने उपरे जिहा मुनि मोक्ष गया छे त्यां कोटयादि संख्या वाचि शब्दो मां शत सहस्त्र ने लाख संज्ञा शत लक्ष ने कोटि संज्ञा पूर्वाचार्यों ए लखी छे पण मंतातर वाक्ये संज्ञांतर सज्ञा कही न थी

" तथा हि श्री हीर प्रश्ने "

तथा श्री शत्रुंजय स्यो परि पंच पाडवैःसमं साधूनां विंशति कोटयः सिद्धा इति श्री शत्रुंजय महात्मयादो प्रोक्त मस्ति साकोटि विंशति रूपा शत लक्ष रूपा वेति,

अत्र शत लक्ष रूपा कोटि र वासियते न तु विंशति रूपे ति बोध्यं ॥ ४ ॥

भावार्थः॥श्री शत्रुंजय ने ऊपरे पांच पांडव साथे वीस कोडी साधु सिद्धा एहवुं शत्रुंजय महात्म्या दिक मां कह्युं

छे ते कोडि वीस रूपे संज्ञांतर गणवी के संख्या संज्ञा ए सो लाख रूपे गणवी ए प्रश्न श्री त्रिश्चर्षि गणि नो तेनो उत्तर श्री तपागच्छ नाय के श्री हीर सूरि जी एं दीधो के इहां सो लाखनी एक कोडि जणाय छे पण वीस रूपे

न जाणवी

दंडी जी. उक्त धन विजय जी दंडी के लेखानुसार तुम्हारे गुरु दंडी आनंद विजय जी ने जैन तत्वा दर्श में जो नितान्त मिथ्या चेष्टा करी है सो वस्तु तः निरर्थक ही की है अस्तु दंडी जी इसही प्रकार तुम्हारे सावद्याचार्य्यों ने कृत्रिम तीर्थों की [पहाड़ों की] अनेक अघटित महिमायें वर्णन कर २ के भद्रक जीवों को पहाडों में भटकाये हैं और मिथ्यात्व की करणी कराई हैं;

रे हिंसा धर्म्मी दंडी जंगम तीर्थ जो साधु,साध्वी श्रावक, और श्राविका हैं उन की भक्ति विधान को छोड़ कर कुगुरु कल्पित स्थावर तीर्थ जो पहाड़ादि हैं उन में जो भटकते हैं और वहां प्रतिमा पूजन में अगणित त्रस तथा स्थावर जीवों की हिंसा करते हैं उन हठ भरे महा शठ नरों को हम तो महा मिथ्यात्वी ही मानते हैं, हम ही नहीं ! किंतु जो मनुष्य एक वार भी जिनोक्त सिद्धांतों को गुरु

गम्य से बांच लेवेगा वह ही तिन हिंसा धर्म्मीओं को मिथ्यात्वी ही मानेगा,

रे दंभी दंडी, तेरें ही दंडी हुकम मुनि ने स्थावर तीर्थों की यात्रा करने को तथा प्रतिमा पूजन करने को सम्यक्तव धर्म्म की क्रिया नहीं मानी है ?

देख तेरा ही दंडी हुकम मुनि " अध्यात्म प्रकरण के अंतरगत " तत्वसारोद्धार " ग्रंथ की पृष्ठ ४१० की पंक्ति १५ मी से लिखता है कि

तीरथ जात्रा व्रत नियम करे ते पण पुन्य होय तो थाय ते वात पण मिथ्यात छे शा माटे के स्थावर तीर्थ नी जात्रा ए जवुं आववुं ते कांइ धरम मां नथी केम के तेने कोइ गुण ठाणानी अपेक्षा लागे नहीं.

शिष्य-स्वामी चोथा गुण ठाणानी ए करणी छे अने तमो पण सम्यक्त द्वार ग्रंथ मां तथा मंदीर स्वामी नी ढालो प्रमुख घणा शास्त्रो मां लावेला छो ने तमे इहां ना केम कोहो छो.,

गुरु-हे मानुभाव अमे जे समयक्त द्वार प्रमुख ने विशे लाव्या छिये तेनु कारण सांभल एक तो कलप वेहे वार

आकाल ना घणा लोको तु माने लुं माटे तथा वीजुं कारण के ढुंडिया लोको वीलकुल प्रतमा उठावी ने वेठा छे ते आपणा पक्ष ने मान देखाडवा वास्ते तथा त्रीजुं कारण एके सासन सारु दीसे एटला माटे अमे लावेला छीये हवे अमे जे चोथा गुण ठाणा नी करणी नी ना कही तेनुं कारण सांभल जे लोको ने सुरी आभ देव नो तथा भुपती प्रमुख नो अधिकार देखाडीये छीये परंतु ते करणी मां विचार घणो छे शा माटे के वजे देवता प्रमुख घणा देवे पुजा देव पणे उपन्या ते वखत करी छे पण तेने भगवाने समकीती कह्या नथी ते तो मिथ्यात्वी छे अने ते देव नवा उपने एटले सर्वे पूजा करे एवु सुत्र जोतां मालुम पड़ेछे परंतु कंइ समकीती मिथ्यात्वी नो नियम रह्यो नथी तेम कंइ फरीथी पुजा करवानो अधिकार कोई नेछे नहिं

पुनःढंडी हुकम मुनि 'अध्यात्म प्रकरण' के अंतरगत 'मिथ्यात्व विध्वंसन' नामक ग्रंथ की पृष्ठ३२४पंक्ति ६मीसे लिखतेहैं कि(शंघ तीर्थ जातरा प्रमुख करवां कराववां ते पण सर्वे शुभ करणी छे तथा जस वजे जी उपाध्याये समकित ना सड़सट बोलनी सझाय ने विशे एवु कह्यु छे जे आठ प्रभाविक साधु न होय तो तीर्थ जातरा प्रमुख वाला छे क प्रभाविक छे एटले ए कई आठ प्रभाविक मां

छे नहिं तथा तेने समकित नो पण नेम छे नहि)

पुनःदंडी हुकम मुनि“ अध्यात्म प्रकरण ” के अंतर गत “तत्वसारोद्धार” की पृष्ठ ४६६ पंक्ति १४ मी से लिखते हैं कि

[तिर्थ जात्रा वरत नेम तथा वाह्य तप तथा व्यवहार क्रिया इत्यादिक ने विशे जे रच्या पच्या रहे छे ते सर्व पुन्य ना इछक छे ने तेने आश्रवी कहिये.]

पुनःतुम्हारा दंडी हुकम मुनि ‘ अध्यात्म प्रकरण”के अंतरगत ‘तत्वसारोद्धार’ की पृष्ठ ४०० पंक्ति २१ मी से स्पष्ट तथा यह लिखते है कि

एवा पाठ कोई सिद्धांत मां जोवा मां आवता नथि जे-फलाणा तिर्थ गया थकी मुक्ति थाय तथा फलाणि तिथी नो उपवास करवो ते थकी मुक्ति थाय तथा ते तप नु उजमणु करवुं तथा गुरु नां नव अंग पूजवां तथा पोथी पुजवि तथा वास नखाववो तथा जोग उपधान वहेवा तथा तेनि बिधि करावबी तेना रुपैया गुरु ने देवा इत्यादिक हाल मां ए वहेवार घणो दिसे छे ने सुत्रमां पाट नथि तेनी परुपणा करवी ने जे सुत्र ने विशे आत्म स्वरूप थी ज मुक्ति कहि ते न परुपे तेने अभि निवेशी मिथ्यात्व कहिये केम के ते

जाणी ने सिद्धांतनी रीते परुपता नथि पोतानी मतलब नु परुपे छे तेने अभी निवेशी मिथ्यात्व कहिये ३

कहिये ढंडी जी तुम्हारे ही ढंडी हुकम मुनि के उपर्य्युक्त लेख से जो शठ तीर्थ यात्रादि शास्त्राविहित कृत्य करने का उपदेश देते हैं अथवा करते और करावते हैं उनके मिथ्यात्वी होने में क्या अब भी कुछ संदेह है ?

ढंडी जी तुम मे से भी जो हुकम मुनि के सदृश भव भय भीरु होता है, और जो जिनोक्त सिद्धान्तों की स्वाध्याय गुरु गम्य से करता है वह तो तुम्हारे कल्पित जड़ (स्थावर) तीर्थों को अवशय अंतः करण से भुलाय ही देता है परंतु तुम तो कोई विलक्षण ही निरक्षर हो ! जो तीर्थ कर कृत जंगम तीर्थों को भूल कर कल्पित स्थावर तीर्थों की पक्ष करते हो.

रे मंगल हटी, तेरे सावद्याचार्य्यों के किये हुये शत्रुंजयादि स्थावर तीर्थ सब आधुनिक (थोड़े काल के बने हुये) हैं; क्योंकि शंत्रुजयादिक को किसी भी जिन प्रणीत सूत्रों में तीर्थ रूप मानेने का वर्णन लेश मात्र भी कहीं नहीं है.

क्यों कि एक कवि ने भी शत्रुजयादिक स्थावर तीर्थों

को सप्रमाण अर्वाचीन काल के वर्णन किये हैं, यथा भजन,

थावर तीरथ संसार में ॥ आधुनिक नजर आते हैं ॥

॥ अंतरा ॥ जिस कर तिरै तीर्थ हैं सोई,

देखो शब्द-अर्थ को जोई ।

सो तौ शक्ति न दीसै कोई,

सरिता और पहार में ॥

पिन कु गुरु भरमाते हैं ॥ आधुनिक नजर आते हैं ॥ १ ॥

जंगम तीरथ को नहि ध्यामें,

कल्पित जड़ तीर्थों पर जामें ।

धाम काम तज पाप कमामें,

वो भव दधि की धार मैं ॥

गहिरे गोते खाते हैं ॥ आधुनिक नजर आते हैं ॥ २ ॥

विक्रम संवत्सर सुँन भाई,

एक सहिंस पैंतालिश माई ।

शत्रुँ जय पर नीम लगाई,

मंदिर बहु विस्तार में ॥
बनवाया बतलाते हैं ॥ आधुनिक नज़र आते हैं ॥ ३ ॥
देखौ जिन भाषित आगम को,

तजदो मिथ्या जाल भरम को।
धारो हिरदे दया धरम को
पड़ौ मती जंजार में ॥
हित धर कर समुझाते हैं ॥ आधुनिक नज़र आते हैं॥४॥
बारै सय छ्यासठ हायन में,
विकट पहाड़ देख कानन में।
बनवाये पगल्या पाहन में,
तब से गढ गिरनार में
तिरथ करने जाते हैं ॥ आधुनिक नजर आते है ॥ ५ ॥
बारै सय पिच्यासी वत्सर,
बनवाया मंदिर आबू पर
तेजपाल अरु वस्तु पाल नर,
हिंसा धर्म्म प्रचार में ॥
दोउ बढिया कहिवाते है ॥ आधुनिक नजर आते हैं ॥ ६ ॥
विक्रमार्क सोलै सय जानों,
ऊपर बरष पचीश बखानों।
तबसे शिखर तीर्थ प्रकटानों,

देखो शिखर मझार में ॥
यह शिला लेख पाते हैं ॥ आधुनिक नजर आते हैं ॥७॥
कर अनुमान शिखर गिर जाई,
वेहद अटवी को कटवाई ।
बीश टोंक जग सेट बनाई,
मूढ अधर्म्म दुवार में ॥
धनव्यय कर हरपाते हैं ॥ आधुनिक नजर आतेहैं ॥ ८ ॥
अचरज विज्ञ वनें जड़ सेवें !
जड़-की भक्ति मुक्ति किम देवें । ?
यह तो वालक हूं लखि लेवे,
लाओ बुद्धि विचार में ॥
इम सत गुरु चेताते हैं ॥ आधुनिक नजर आते हैं ॥ ६॥

यद्यपि यह भजन तुम्हारे मान्य ग्रंथों के प्रमाणों से सुशोभित नहीं है तथापि हम इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि उक्त भजन में गिरिनारि आदि तीर्थोत्पात्ति के जो २ कवि ने संवत् दिये हैं सो करीव २ सत्य ही है क्यों कि वहां के शिला लेखों में पद्य में कहे हुये संवत् से प्राचीन संवत् नहीं लिखे हैं ऐसा हम ने भी अनेक प्रामाणिक यात्रीओं से निर्णय किया है, अतएव पूर्वोक्त

स्थावर तीर्थ सर्व अर्वाचीन काल के ही हैं !!

तेरह में छंद के दूसरे चरण में रे मंगल तूं लिखता है

अपने आप तीर्थ बन बैठे अपना धाम मनाया है

उत्तरः-दंडी, यह लेख तेरे अविवेकी पने का है; क्यों कि हम सनातन जैन साधु अपने आप तीर्थ नहीं बन बैठे हैं किंतु तीर्थ कर कृत तीर्थ में उपस्थित है.

और रे मंगल दंडी, न हम ने अपना कोई धाम मनाया है; कारण कि सु साधु तो अनगार होते है वह तो कोई धाम अपना रखते ही नहीं;

रे विचार विकल दंडीओं, ऐसे तो तुम्ही हटी हो जो परमोत्कृष्ट अनगार तीर्थ कर भगवान का भी धाम मानते हो; धन्य है तुम्हारी दुर्बुद्धि को; रे दुर्म्मती दंडी, हम तो किसी के भी कल्पित चर्णों को तथा समाधियों को नहीं मानते हैं और न मनाते हैं !!

तेरह में छल छंद के तीसरे चरण में रे विवेक विकल दंडी तूं ने श्रमणो पाशकों के ऊपर आक्षेप किया है कि

बांदे पूजे माने मानता सेवक के मनभाया है

उत्तरः-रे मंगल दंडी तेरा यह आक्षेप भी नितांत मिथ्या है; क्योंकि हमारे सुश्रावक किसी के भी कल्पित चरणों को तथा समाधिओं को आत्म कल्याणार्थ नही वांदते पूजते है; और जो लुधियाने आदि मे समाधि स्थापित की है सो लौकिक मान वड़ाई के लिये करी प्रतीत होती हैं उन्हें सुशोभित देखकर तूं क्यों झुलसता और ईर्षा करता है?

तथा जो कोई भद्रक जीव मानता मानते होंगे सो भी लौकिक कार्य्यों की ही सिद्धि के लिये मानते होंगे. जैसे सम्यक्त्वी चक्रवर्त्यादिक चक्ररत्नादिक की मान्यता करेत हैं, परंतु हमारे दृढ श्रद्धालु श्रावक किसी भी अविरतिदेव की सेव लोको त्तरकार्य्य की सिद्धि के अर्थ नहीं करते, और जो तूंने सत्तप शम दम संयमाद्यलंकृत महा मुनि तपस्वी जी श्री लालचंद जी की जाति का नाम लिख कर प्रकट किया है सो तो तूं ने एकांत द्वेष पोषण ही किया है; रे दुर्भागी दंडी तूं तो आत्मराम के कल्पित चरण तथा समाधि को उभय लोकार्थे वंदता पूजता है तथा तेरे वहुत से सधर्म्मी मानता भी मानते हैं, परंतु उस दंडी आत्माराम (आनंद विजय) को "उत्पात्ति लक्षण" नामक ग्रंथ की पृष्ठ ३ री में स्पष्ट तथा वर्ण र (वु स) सिद्ध किया है; उक्त ग्रंथ में लिखा है कि दंडी आत्मा-

राम (आनंद विजय)की माता रूपाँ नाम की तरखाना अर्थात् बढइन थी जब उस का पति मर गया तब वह गणेशसिंह नामक क्षत्री के घर मे रहने लगी उस से दंडी आत्माराम जी अर्थात् आनंद विजय जी का देह निर्म्माण-हुआ इन के माता पिता दिकों ने इन का नाम दित्ता रखा था; तो कहिये दंडी जी उपर्य्युक्त ग्रंथके लेखानुसार तुम्हारे पूज्य गुरु दंडी आनंद विजयजी वर्ण र (वु · स) थे, या नही ?

और रे मंगल दंडी, यदि तुम्हारे पूज्य गुरु दंडी आत्माराम(आनंद विजय)जी वर्ण र[वु स]थे तो वु स (वर्ण र)को तो जिनागमों में अंत्यज [चां ल] जाति से भी विशेष नीच कहा है तओ चं ···ल वु ·· सो इति आगम वचनात ऐसे की प्रति कृतियें बनवाके तुम पक्षपाती दंडी कल्पित तीर्थ करों के निकट स्थापन कर वंदते पूजते हो, जिस को तुम्हारे ही दंडी धन विजय ने "चतुर्थ स्तुति निर्णय शंको द्धार" ग्रंथ के अनेक स्थलों में "उत्सूत्र भाषी अनंत संसारी = दीर्घ संसारी = भांड जैसे स्वांग का धारी मृषावादी" आदि सिद्ध किया है, तथा उस की तुम दंडीओं को यह भी निश्चय खबर नही हैं कि वह कौनसी गति को प्राप्त हुआ है।

पुनः रे विवेक विकलदंडीओं, तुम्हारे वडे२ प्रशंसा पात्र हेमचंद्र हीर विजय आदि शूर हो गये बतलाते हो और जिन्होंने अनेक राजा वा पातशाहों को दया पालने का सदुप देश दे दे के दया भगवती की आराधना करी बतलाते हो उन की तो प्रायः तुम्हारे कोई भी पूर्वजों ने प्रतिमा बनवा के कल्पित तीर्थ करों के समीप स्थापन कर उन की वंदना पूजना नहीं करी प्रतीत होती तो क्योंरे दंडी उन हेमचंद्रादिकों से भी यह दंडी आत्माराम (आनंद विजय) जिस कों वर्ण सं र लिखा है, अधिक भाग्य शाली था जो उस की प्रतिमा को तूं वंदता पूजता है ?

रे दंडी तुझे लज्जा भी नहीं प्राप्त होती है ?

रे दंभी दंडी चउदहमें छल छंद में तूंने लिखा है कि

थथ्था-थोड़ी मान बडाई खातर क्यों ललचाया है, मान के कारण ज्ञान भुला कर परमारथ उलटाया है, सूत्र अर्थ का भेद न जाना पंडित राज कहाया है ॥

उत्तरः रे बुद्धि हीन मंगल दंडी यह लेख लिख कर तो तूंने केवल त्रिंशिका की ही पूर्त्ति करी है अतएव ऐसे२ निस्सार लेखों के उत्तर लिखने में हम अपने अमूल्य

समय को व्यर्थ व्यतीत नही करना चाहते, हां, इतना लिखना तो आवश्यक समझते हैं कि तूंने ही थोड़ीसी मान बड़ाई के लिये अवश्य मन ललचाया है; अन्यथा कुकवि ढंडी वल्लभ की बनाई " द्वात्रिंशिका " दंडी अमर कृत "नेत्र-धूलि ' ग्रंथ में छपी हुई है उस में से कुछ २ शब्दादि परिवर्त्तन कर और अपने नाम से ' त्रिंशिका " प्रकट करवाय कर उस कुकवि का पूत तूं क्यों बनता ?

रे मंगल ढंडी, क्या तुझ को यह मालूम नहीं है कि जो किसी दूसरे कवि की कविता मे से कुछ २ शब्दादि परिवर्त्तन कर अपने नाम से प्रकट करता है वह उस असली कवि का पूत होता है; रे ढंडी, क्या तूं इतना भी नहीं जानता है कि **एक कविन की इस्तिरी, एक कविन के पूत। एक कवि है कविन में, एक कवि अवधूत ॥ १ ॥**[1]

और तुम दंडी ही मान के कारण ज्ञान भुला कर परमार्थ को उलटा रहे हो क्यों कि यह बात तुम्हारे ही दंडी धन यिजय ने " चतुर्थ स्तुति निर्णय शंकोद्धार ' ग्रंथ के अनेक स्थलों में सिद्ध करी है;

और रे बुद्धि हीन मंगल, जिस में पांडित्यता का गुण होगा वह ही पंडित राज हो सकता है, केवल ढोंग बनाने से, वा,ढकोंसले बाजी से ही यदि पंडित राज होने लगते तो तुँहीं अपने को पंडित राज न कहा लेता, किसी कवि ने भी सत्य कहा है कि ऊँचे बैठें नालहैं, गुण विन वड़पन कोय। वैठो देवल शिखर पर, वायस गरुड़ न होय ॥ १ ॥ तौ रे मंगल तूं गुण युक्त पंडित राजों के सुयश को श्रवण कर यों कहि२ कर क्यों?व्यर्थ कर्म्म बंधन करता है कि सूत्र अर्थ का भेद न जाना पंडित राज कहाया है,

रे मृषा वादी दंडी, ऐसे२पंडित राजों से ईर्षा करने से तूं पंडित राज नहीं कहला सकता; हां यह तो है कि ज्ञाना वरणीय कर्म्मको बंधन तो अवश्य हो सकता है; अस्तु??

पंद्रहमें छल छंद में दंडी तूंने यह लिखा है कि

दद्दा-दंडा दशवे कालिक प्रश्न व्याकरण गाया है। अचारांग निशीथ भगवई आदि पाठ पढ़ाया है। जिन के हिरदे की गई फूटी उन को नजर नहीं आया है॥

उत्तरः-रे दंडी तेरा यह लिखना तो असमंजस हैं, क्यों कि दशवै कालिक, प्रश्न व्याकरण,-आचारांग-निशीथ-और भगवती आदि किसी भी जिन प्रणीत सिद्धांत में आवाल वृद्ध साधुओं को दीक्षित हों तभी से नियमत सदैव आकर्णांत दंड धारण करने की जिनाज्ञा नहीं है, दंडी जी दशवै कालिक सूत्र के " षट्जीवनिकाय " नामक चतुर्थाध्ययन में तो त्रस जीवों का यत्नाचार विधान करते हुये भगवान ने यह फरमाया है कि हस्तादिकों के उपरि कीटादि त्रस जीव चढ़ि जायँ तो साधु उन जीवों की यत्ना चार पूर्वक प्रति लेखना प्रमार्ज्जना करे, परंतु ऐसा तो दशवै कालिक सूत्र में कहीं भी नहीं कहा है कि सर्व साधुओं को दंड अवश्य रखना ही चाहिये, अब दंडी जी आप की संतुष्टि के लिये 'दशवै कालिक" सूत्र का पाठ लिख दिखाते हैं,

से भिक्खूवा भिक्खू णी वा संजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दियावा राओवा एगओवा परिसा गओवा सुत्तेवा जागर माणेवा से कीडं वा पयंगंवा कुंथुं वा पिवीलियंवा हत्थं सि वा पाउं सिवा बाहुं सिवा उरुं सिवा उदरं सिवा सीसं सिवा वत्थं सिवा पडिग्गहं सिवा कंवलं सिवा पाय पुच्छणं सिवा रय हरणं सिवा उडुगं सिवा

दंटगं सिवा पीढगं सिवा फलगं सिवा सेज्जं सिवा संथारंग सिवा अरणूर्ण यरं सिवा तहप्पगारे उवगरण जाए तओ संजया मेव पडिलेहिय पडिले हिय पमज्जिय पमज्जिय एगंत मवणेज्जा नो ण **संघाय मावजेज्जा** ॥ ६ ॥

इस का भावार्थ यह है कि साधु अथवा साध्वी सं-यमं वान व्रती ? हन दिये है प्रत्या ख्यान कर के पाप कर्म्म जिस ने, वो व्रती ? दिन में अथवा रात्रि मे एकले पने में तथा परिषद् में, वैठे हुवे में वा सोते हुवे में और जागते पने में कीट द्वीन्द्रिया जीव पतंग चतुरिन्द्रिय जीव विशेष, कुँथुव, पिपीलिका, त्रीन इन्द्रिय वाले जीव हाथ के विषे, पग के विषे, वाहु के विषे, उरु साथल के विषें, उदर पेट पर, मस्तक पर, वस्त्र के विषें पात्र के विषें कंवल पर पाद पुंछन पर, रज हरण (ओघा) के विषें, गोच्छा प्रमार्जनी के विषें, कंडे के विषें दंड के उपर पीठ चौकी के उपर फलक (पट्टे) के उपर सय्या के विषें संस्तारक (त्रण प्रमुख) के विषें इन से भिन्न और भी जो तथा प्रकार के उपकरण हाँय उन के विषें चढे हाँय तो तिन हस्तादिक पर से उन कीटादि जीवों की यत्ना चार पूर्वक निश्चय प्रति लेखना करे और प्रति लेखना कर के प्रमार्जना करे प्रमार्जना कर के उक्त कीटादि त्रश

जीवों को एकांत उतारे परंतु इस विध से उतारे कि उन जीवों का संघात न होय,

अब कहिये मंगल दंडी जी इस "दशवै कालिक" सूत्र के पाठ में जैसे तुम दंडी दंड रखना बतलाते हो वैसे स्थावर कल्पी सर्व साधारण साधु, साध्वीओं को नियमित सदैव दंड रखना कहां कहा है ? रे मंगल दंडी तैंने दशवै कालिक सूत्र पढ़ा भी है या, निरक्षर भट्टाचार्य्य ही है?

यदि तुम दंडी "दंडगं सिवा" इतने पद मात्र से ही सदा दंड रखने की भगवदाज्ञा बतलाते हो तो जैसे तुम बसति [स्थान] से बाहर जाते समय दंड को रजहरण की तरह साथ रखते हो वैसे ही पीठ फलक को भी साथ रखना चाहिये, तथा रे मंगल दंडी, तू अपने गुरुओं की पीठ के पीछे [बसति से बाहर जॉयॅ तब] एक तृण के पुंज को भी बांध ले चलने की अरज करदे जिस से वह विलक्षण दुम दार दीखा करें ? क्यों कि दशवै कालिक सूत्र में तो "दंडगं सिवा" इस पाठ के आगे "पीढगं सिवा" फलगं सिवा, सेज्जं-सिवा-संथारगं सिवा इत्यादि यह पाठ भी भगवंतो ने वर्णन किया है, अतएव पीठादिक भी सदैव पास रखने ही चाहिये ?

रे मंगल दंडी, "दंडगं सित्रा" इस पाठ का तो यहां यह परमार्थ है कि, कोई स्थविर मुनि ने कारण वश दंड रक्खा हो तो उस की भी प्रति लेखना प्रमार्जना करें, परंतु इस पाठ का यह परमार्थ नहीं है कि दीक्षित होंय तभी से सर्व साधुओं को अवश्य दंड रखना चाहिये

तथा रे मंगल दंडी. प्रशन व्याकरण सूत्र का प्रमाण भी तूंने मिथ्या लिखा है; क्यों कि प्रश्न व्याकरण सूत्र के मूल पाठ में कहीं भी स्थविर कल्पी साधुओं को दंड रखने की भगवदाज्ञा नहीं लिखी है, यदि कहीं लिखी है तो मूल पाठ का प्रमाण प्रकट कर अन्यथा तूं उत्सूत्र भाषी समझा जायगा; रे मंगल दंडी, प्रश्न व्याकरण सूत्र के पंचम संवर द्वार में स्थविर कल्पी सर्व साधारण साधुओं को संयम निर्वाह के अर्थ पडिग्गह आदि चउदह उपकरण रखने भगवंत ने वर्णन किये हैं, परंतु उन में दंड का तो नाम भी नहीं है, अतएव यह स्पष्ट सिद्ध है कि निःकारण दंड रखना जिनाज्ञा से बाहिर हैं, यदि सर्व साधुओंको दंड रखने की जिनाज्ञा होती तो चउदह उपकरणों में दंड का नाम भी अवश्य होता और चउदह उपकरण नहीं किंतु पंद्रह उपकरण गिनाते, यदि दंडी जी इस दंड का रखना "आदि" शब्द में ग्रहण करेंगें तो तिन के पूर्वज टीका कार

इस ' आदि ' शब्द की व्याख्या में स्पष्ट लिख देते, परंतु उन्होंने " आदि " शब्द की व्याख्या में दंड रखना नहीं लिखा है;

देखो दंडी जी तुम्हारे ही मतानुयायी मकसूदाबाद निवासी राय धनपतसिंह बहादुर के छपाये हुए " प्रश्न व्याकरण " सूत्र की पृष्ठ ५०१ की पंक्ति १ मे "आदि" शब्द की व्याख्या इस प्रकार लिखी है कि, तत

एतान्यादि यस्य तत्तथा, अब दंडी जी को विचारना चाहिये कि "आदि " शब्द की व्याख्या में भी टीकाकारों ने दंड का रखना नहीं लिखा है तो फिर प्रश्न व्याकरण सूत्र का मिथ्या प्रमाण देकर क्यों भव्य जीवों को बहिकाया जाता है ?

तथा दंडी जी ने " आचारांग निशीथ, और भगवती" जी का जो प्रमाण दिया है सो भी असमंजस ही है, क्यों कि " आचारांग-निशीथ और भगवती जी ' में ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है कि, सर्व साधु तथा साध्वी ओ को सदैव दंड रखना; अतएव यह प्रतीत होता है कि, मंगल दंडी जी ने ऐसे झूंठे २ प्रमाण केवल भव्य जीवों को अपने दंभ रूप फंद में फंसाने के अभिप्रायसे ही लिखे

हैं; और जो भगवती जी सूत्र के अष्टम शतक के षष्टमोद्देश में "लट्ठी" ऐसा शब्द आता है सो यथेष्ट, परंतु उस पाठ का यह परमार्थ नहीं है कि, सर्व साधु, साध्वीओं को सदैव दंड रखना; उस पाठ का तो यह परमार्थ गुरु गम्य से धारण किया है कि, जो साधु स्थविर भूमि को प्राप्त हुए होंय और कारण वश "लट्ठी" अर्थात् दंड रखना होवे तो दातार की कही हुई विधि से "लट्ठी" अर्थात् दंड ग्रहण करना; और हिरदे की तो दंडी जी की ही फूट गई प्रतीत होती है कि जो उनको सिद्धांतों के सत्य अर्थ नहीं भासेत हैं; पुनः दंडी जी इसी पंद्रहमें छल छंद के नोट में लिखते हैं कि यदि ढुंढियों का यही निश्चय है कि साधु दंडा लाठी नाहीं रखे तो कई ढुंढिये ढुंढनीयां दंडा लाठी लिये फिरते हैं सो क्या बात है? यदि कहो कि बूढा रखे तो वो पाठ दिखाना चाहिये कि इतने वर्ष का होवे तब दंडा लाठी लेवे अन्य तुम्हारे गपौडे को तुम्हारे सरीखा गपौड़ी ही मानेगा प्रेक्षावान तो कोई भी नहीं मानेगा दंडी जी का यह लेख अनभिज्ञ पने का है; यदि यह जिनागमों के जानकार होते तो ऐसा प्रश्न कदापि न करते; क्योंकि जो साधु स्थविर भूमि को प्राप्त हुआ होवे उस स्थविर साधु को तो दंड तथा यष्टिका रखनी कल्पै यह जिनाज्ञा

"व्यवहार" सूत्र के अष्टमोद्देश के पंचम सूत्र में प्रकट कहा है, यथाः—

थेराणं थेर भूमि पत्ता णं कप्पइः-दंड एवा-भंड एवा-छत्तंवा-पत्तएवा-लाठ्ठिया एवा,

इस का भावार्थ यह है कि, स्थविर जो जरा कर के जीर्ण अर्थात् स्थविर भूमि को प्राप्त हुए होंय उन स्थविर साधु तथा साध्वी जी को कल्पता हैः- दंड नाम कान प्रमाण का एक काष्ठ का उपकरण-भंड सो उपकरण विशेष, छत्र सो मस्तक मे पछेवडी का ओढना, पात्र सो उच्चारादि के परिष्ठापन करने को और यष्टिका छाती प्रमाण की लंबी रखनी; अब दंडी जी को सोचना चाहिये कि स्थविर साधु साध्वीओं को दंड तथा यष्टिका का रखना इस 'व्यवहार" सूत्र के कथनानुसार कल्पता है, या नहीं ? और क्या गप्पी मंगल दंडी जी इस व्यवहार" सूत्र के प्रमाण को भी गपोड़ा ही मानेंगे ? और यदि सर्व साधुओं कोही दंड रखना कल्पता तो इस "व्यवहार' सूत्र में गणधर महाराज यह पाठ क्यों ! फरमाते कि ["थेराणं थेर भूमि पत्ताणं कप्प,ः-दंड एवा] किंतु यह पाठ कहते कि,[निगथाणं निगथींणं कप्पइः-दंडएवा, परंतु ऐसा पाठ तो नहीं कहा है, अतएव यह स्पष्ट सिद्ध है, कि स्थविरो को

ही दंड रखना कल्पै अन्य सामान्य साधुओं को निः कारण दंड रखने की जिनाज्ञा नहीं है; और जो "भगवती" जी सूत्र के अष्टम शतक के षष्ठमोदेश में "लट्ठी" का पाठ आता है सो भी स्थविरों के ही प्रति हैं, अन्य सामान्य साधु ओं के प्रति नहीं है: क्यों कि "व्यवहार" सूत्र के उपर्य्युक्त प्रमाणानुसार "लट्ठी" रखने की भी जिनाज्ञा स्थविरों को ही है, अन्य सामान्य साधुओं को नहीं है; और इस विषय मे दंडी जी ने वर्षों का प्रमाण पूछा है सो तो अपनी अज्ञानता प्रकट करी है क्यों कि जिनागमो के विषे जो विधि वाद का कथन है सो प्रायः त्रिकाल विषयिक है जैसे कि जिस समय में पूर्वों की आयु थी तव भी स्थविर होते थे और अव यदि शतायु है तो स्थविर अव भी होते है; अतएव शास्त्रों में "स्थविरों को दंड रखना कल्पै" यह लिख दिया है तो जिस समय में जितनी वय वाले को स्थविर भूमि प्राप्त होवे उस समय में उतनी ही वय वाले को स्थविर जानना, इस में वर्षों का प्रमाण पूछना. यदि अज्ञानता नहीं है तो क्या है? क्योंकि स्थविर इस शब्द का स्पष्ट अर्थ वुड्ढा ही है देखो "पद्मचंद्र कोश" की पृष्ठ ४३७ की पंक्ति १९ मी

स्थविर, [न०] ......बूढा....... पुनः क्या

मंगल दंडी जी इतना भी नहीं जानेत हैं कि, वर्तमान काल में कितनी वय वाले को " स्थविर " अर्थात् वुड्ढा कहते हैं; जो वर्षों के प्रमाण पूछने की कुतर्क करी है ? परंतु अब इस कुतर्क का भी सिद्धांतोक्त उत्तर लिखा जाता है;

देखो, मंगल दंडी सरीखे वक्र जड़ों के भ्रम को विध्वंस करने के लिये श्री " स्थानांग " जी सूत्रके तृतीय स्थान में "स्थविर भूमि प्र स्र स्थविरों के वर्षों का प्रमाण भी गण धर महाराज ने स्पष्ट तया वर्णन कर दिया है;"

तओ थेर भूमी ओ पएणंता तंजहाः-जाइ थेरे-सुय थेरे परियाय थेरे; सट्ठिवास जायए समणे निग्गंथे जाइ थेरे. समवाय धरेणं समणे निग्गंथे सुय थेरे वीस वास परिया एणं समणे निग्गंथ परियाय थेरे; इस का भावार्थ यह है कि, तीन स्थविर भूमि प्ररूपण की हैं अर्थात् स्थविर नाम जो वृद्ध हैं उन की अवस्था की मर्य्यादा तीन तरह से वर्णन की है, सो इस तरह से हैं कि, जन्म से १ सूत्र से २ और पर्य्याय से ३ ॥ पुनः गणधर महाराज इन का स्पष्टी करण करते हैं कि, जो जन्म दिवस से साठि वर्षकी अवस्था को प्राप्त हो जाय वह श्रमण निर्ग्रंथ जाति स्थविर ' कहा है. १. जो ' स्थानांग ' ' समवायांग ' को

पढ ले वह श्रमण निर्ग्रंथ 'श्रुत स्थविर' कहा है. २. और जो वीस वर्षका दीक्षित हो जावे उसको "पर्य्याय स्थविर" कहा है ३॥

अब कहिये मगल दंडी जी, "बूढा रखे तो वो पाठ दिखाना चाहिये कि इतने वर्ष का होवे तब ढंडा लाठी लेवे "इस तुम्हारे प्रश्न का ठीक २ उत्तर हो गयाया अब भी कछ कसर ही रही ?

पुनः विचार शून्य दंडी जी. जिनोक्त सिद्धांतो को प्रमाण मान कर तनिक तो विचार करो कि युवावस्था वाले निरोग साधुओ को निःकारण कान तक लंबे दड रखने की क्या आवश्यकता है ? किंतु विना कारण तो ढंड रखना केवल परिग्रह ही होता है, और लोकिक मे भी निःकारण ढंड वह ही मनुष्य रखते हैं कि जो क्रोधी तथा भयाकुल होते हैं, और सनातन जैन साधु हैं सो तो उपशान्त चित्त अरु सप्त भयों कर रहित होते हैं; अतएव सु साधु तो निःकारण दंड नही रखते और यदि साधु नाम धरा कर भी निःकारण दंड रक्खे वह साधु नहीं किंतु सशस्त्र होने से क्रोध मूर्ति है; क्यों कि दंडी जी दंड भी एक प्रकार का हथियार ही है; और द्विपदादि जीवों को भय उपजाने का कारण है; मंगल दंडी जी आश्चर्य्य तो

यह है कि, तुम्हारे ही पूर्वजों ने दंड को हथियार माना है और स्पष्ट तया लिखा भी है तथापि तुम्हारे जैसा नेत्रांध और कौन होगा कि, जो तुम्हें वह लेख दिखते ही नहीं, अस्तु देखो मंगल दंडी जी तुम्हारे ही मान्य ग्रंथ " प्रकरण रत्नाकर " के तीसरे भाग की पृष्ठ २६२ पंक्ति १७ के लेख का **मूलः** उउ वद्धंम्मि उ दंडो, विदंडओ थिप्प एत्र वरिसयाले, जंसो लहुओ निज्जई कप्पं तरिय ओ जल भएणा ॥ ६८० ॥

इस का अर्थ यह लिखा है कि,

अर्थः उउ वद्धं के० ऋतु वद्ध काल एटले चौमासा विना आठ मास कालमां भीक्षा वेलाये द्विपद मनुष्यादि जे प्रद्वेषी होयते अने चतुष्पद गाय घोड़ा दिक तथा वहु पदः शरभादिक तेना निवारण ने अर्थें तथा विहार करतां अटवीमां व्याघ्र चोरादिक नो भय निवारणने अर्थ दांडो हथीयार छे माटे **दांडो लेवोः** पुनः मंगल दंडी जी इसी वात को पुष्ट करने के लिये तुम्हारे ही मान्य दंडी लाभ विजय जी स्वरचित " स्तवनावली " ग्रंथ की पृष्ठ १८३ की पंक्ति ५ मी से लिखते हैं कि,

केशरीया वाना पीताम्बर कंवली काठ के

लोटा डांडा राखें पशू डरा में जिहां देखा जिहां टोटा इत्यादि तुम्हारे ही अनेक ग्रंथों के प्रमाणों से तथा लौकिक व्यवहारों से यह बात स्पष्ट सिद्ध है कि, दंड जो है सो 'हथियार' है और पर जीवों को भय उपजाने का कारण है; अतएव सु साधु निःकारण दंड नहीं रखते; और न कहीं जिनोक्त सिद्धांतो में सर्व साधुओं को दंड रखने की जिनाज्ञा है; यदि मंगल दंडी जी आप कुछ पांडित्यता का गर्व्व रखते हो तो जिनोक्त बत्तीश सिद्धांतो का वह पाठ लिख कर क्यों नहीं प्रकट करते कि, जिस में यह लिखा होवे कि, दीक्षित होंय तब ही से सर्व साधुओं को निःकारण दंड रखना, यदि न रखे तो अमुक प्राय-श्चित्त आवे ??

सोलह में छंद के प्रथम चरण में दंडी जी तुम लिखतेहो कि **धधूधा धर्म जैन नहीं तेरा गुरु नहीं कोई पायाहै**

उत्तरः- मंगल दंडी जी तुम्हारा यह लेख नितांत मिथ्या है क्यों कि जिनोक्त सिद्धांतानुसार श्रुत धर्म्म तथा चारित्र धर्म्म हम ने धारण किया है और ऐसे ही हमारे पूर्वजों ने भी धारण किया था; इस लिये हमारा जैन धर्म्म अवश्य हैं, और हम को सुगुरु भी चारु चारित्र पात्र, नि-

र्म्मल गात्र तथा रूप के श्रमण प्राप्त हुए हैं; यदि मंगल दंडी जी आप हमारी गुर्वावली से अपरिचित हैं तो "सिद्ध पाहुड' ग्रंथ की स्वाध्याय यत्न पूर्वक आप को अेकवार अवश्य करनी चाहिये ताकि आप हमारी गुर्वावली केभी ज्ञाता हो जॉयँ और आप को अपने मिथ्या लेख के प्राय- श्चित करने की भी सद्बुद्धि प्रकट हो जाय, परंतु यह बात अवश्य है कि जैना भास दंडी जी तुम को ही जैन धर्म की प्राप्ति अवश्य नहीं हुई है ; क्यों कि तुम जिनागमों से विरुद्ध हिंसा मयी धर्म को मानते हो इस लिये,और न तुम को कोई संयमी गुरु ही मिला है; मंगल दंडी जी,आप को ही क्या ? किंतु आप के परम पूज्य गुरु दंडी आनंद विजय जी को ही कोई संयमी गुरु नहीं मिला ? देखो "चतुर्थ स्तुति निर्णय शंकोद्धार की भूमिका की पृष्ठ २७ पंक्ति २१ मी से आप के ही सहयोगी दंडी धन विजय जी स्पष्ट तया लिखते हैं कि:-

" आत्माराम जी आनंद विजय जी तो [विद्वान पणानो अभिमान धारण करी ढुंढक मतमां थी नीकली ने कुलिंग पणुं धारण कर्युं, पण कोई संयमी गुरु देखी तेमनी पासे उप संपद अर्थात् नवी दिक्षालीधी नहीं,अनेह आर्य ? तमे श्री बुटेराय जी ना शिष्य थयोते माटे श्री बुटे

राय जी पासे उप संपद् ग्रहण करी कहो छो ते तो तमे बुकस वावी ने बीजोदगम करी शुन्य नी मुठी भरवानी इच्छा करो छो, केम के श्री बुटेराय जी अर्थात् श्री बुद्धि विजय जी तो ढुंढक मतमां थी नीकली ने मुह पत्ती नी चरचा बनावी ते छपावी ने श्रावकों ए देशावरों मां प्रसिद्ध करी, तेमां लखे छे के मेरी सरधातो श्री जसो विजय जी के साथ घणी मिले हे जिम उपाध्याय जी नाम मात्र तपे गच्छ का कहीलाता था तिम मेरे को बी नाम मात्र तपे गच्छ का कहिलाया जोइए. मेने उपाध्याय जी के अणुराग कर के लोक व्यवहार मात्र समाचारी अंगीकार करी. राज नगर मध्ये सुभाग विजे तथा माणि विजय पासे गच्छ धारी ने हम १ तथा मुलचंद २ तथा व्रद्धि चंद सेठा की धर्म शाल में चले आए, एता उन के साथ मेरा संबंध थी मेंने कर्म जोरे पांचमा काल में जन्म लिया विराग पिण आव्या गुरु संजोग न मिल्या ते पाप का उदा इत्यादि बुटेराय जी ना वचन जोतां तो श्री बुटेराय जी ए श्री यशो विजय जी उपाध्याय जी ने परोक्ष पणे भाव थी गुरु धारण करी लोक व्यवहार मात्र श्री तपा गच्छनी समाचारी अंगीकार करी. पण कोई पासे उप संपद अर्थात् फरी दिक्षा धारण करी नहीं, पण कदाच कोई कहे शे के श्री सोभाग विजयजी तथा माणि विजय जी पासे गच्छ धारण

करयो तेज उप संपद ग्रहण करी समजवी. एम कहेवुं ते
पण मिथ्या छे. कारण के सोभाग विजय जी तो जेम श्री
रुप विजय जी ए रूपसी पन्नसी ना नामनी हुंडियो
चलावी तेम सोभाग विजय जी पण हुंडियां चलावता,
तथा एक ठेकाणे रहेता ने कोइ ठेकाणे विहार तो तेमनो
मेना विना थतोज नहीं ,इत्यादि असंजम प्रवृत्ति श्री गुर्जर,
मारवाड़ देश ना सर्व संघ मां प्रसिद्ध छे, तेम कारण विना
एक ठेकाणे रहे वानी तथा डोली प्रमुखमां वेसवानी अने
परिग्रहादि संचय असंजम प्रवृत्ति लोहार (लवार) नी
पोलवाला* श्री मणि विजय जी नी पणहती,तेथी ज मुख
पत्ति चरचाना ५६ मां पृष्ठ मां श्री बुटेराय जी लखे छेके *
बाइ दिक्षा लेने वाली थी ते साधां की रुपइये चडाय के
पूजा करने लगी, प्रथम तो रुपइये चडाइ ने रत्न विजय
जी की पूजा करी फेर मणि विजय जी ने आगे रुपइये
चडाइने पुजा करी, पीछे मेरे को रुपइये चडावणे लगी,
तिवारे नित विजय जी बोल्या महारे आगे रुपइये चडावणे
का कुच्छ काम नहीं. हमारे रुपइया की खप नहीं, इम कही
ने मने कर दीने तिवारे हम सबे तहां ते ऊठ के चले आये
पीछे तिनाने बाइ कुं दिक्षा देके सहर में चले गये, ए वा-

*पोल वाले ही जो ठहरे?

क्यो थी स्पष्ट मालम पडे छे के जो डेहेला वाला रत्नविजय जी तथा लवारनी पोल वाला मणि विजय जी परिग्रह नो संचय न होता राखना तो साधु भक्ति कृत अग्र पूजा ने बुटेराय जी प्रमुख निषेध करत नहीं पण मणि विजय जी तथा रत्न विजय जी संचय करता हता, तेथी निषेध करी उठी ने चालता थया एथी ए पण सूचना थई के श्री बुटेराय जी मणि विजय जी ने संयमी गुरु जाणी ने उपसंपद ग्रहण करी होत तो पोता ना गुरु नी एवडी मोटी आशातना करत नहीं, एथी ए निश्चय थयुं के श्री बुटेराय जी ए तो मणि विजय जी ने संयमी गुरु धार्या नहीं केम के मणि विजय जी प्रमुख तो स्वेत मानो पेत श्री वीर प्रभु नो स्वेताम्वर जैन लिंग छोडीने पीतांबर अर्थात् पीला कपड़ा धारण करता हता, अने श्री बुटे रायजी नो मत तो श्री यशो विजय जी उपाध्याय जी थी मलतो हतो अने श्री यशोविजय जी उपाध्याय जी ए तो श्री दशमत्ताधिकार तवनमां तथा कुमती कपट स्वाध्याय मां तथा उपाध्याय जी नी परंपरा मां थएला श्री उदय विजय जी वाचक प्रमुखे श्री हित शिक्षा पट् त्रिंशका मां तथा श्री गच्छा चार विचार वोल पत्रक ग्रंथ मां पीला कपड़ा धारण कर नार ने कुलिंगी निन्हव असंयती कह्या छे; ते ग्रंथ ना पाठ ग्रंथ गौंरवना भय थी इहां असो जणावता न थी, कोइने जोवा हो-

थ तो अस्मत् कृत श्री स्तुति निर्णय विभाकर जोइ शंका निवर्त्तन करवी. इहां तो एटलुंज मयो जन छे के श्री यशो विजय जी उपाध्याय जी नी श्रद्धा श्री वुटे राय जी ने जचेली (गमेली) हती. तेथीज श्री वुटे रायजी ए सर्व संवेगी नाम धारी ने कु गुरु समझी तेम नो लिंग त्यागन करी स्वेत कपडा धारण करी * अबी जैन सिद्धांत के कहे मुजब कोई साधु हमारी देखणे मे नहीं आया और हमारे मे बी तिस मुजब साधपणा नही है तिस्मे हम भी साधु नही है * इत्यादि श्रद्धा पूर्वक अंत काल सुधि श्री अमदा वाद मां श्री वुटे राय जी रह्या ते सर्व शेठिया प्रमुख त्यां ना संघ मां प्रसिद्ध छे तो हवे विचार कर वो जोइए के आत्माराम जीना गुरु ने संयमी गुरु मल्या नहीं ने तेओ मां संयमी पणुं हतुं नहीं तो आत्माराम जी मां संयमी पणुं ने-संयमी गुरु मल्या एवु विद्वान मूज्ञ जन तो कोई कहे नहीं, पण कदाच अज्ञता ना जोर थी आत्माराम जी आनंद विजय जी ऐ जेम श्री-वुटे राय जी ने गुरु धारण करया तेम श्री बुद्धि विजय जी ए नाम थी संवेगी श्री मणि विजय जी ने गुरु धारया होय तो पण जैन मत ना शास्त्रानुसार आत्माराम जी ने साधु मानवा ए वा-

र्त्ता सिद्ध थती नथी, केमके आत्माराम जी प्रथम तो ढुंढक मत वासी थानक पंथी ढुंढ़िया हता ए वार्त्ता तो सर्व संघ मां प्रसिद्ध छे ने पछी स्वलिंग श्री महावीर स्वामी ना यति नो स्वेत मानो पेत कपडानो छोडी अन्य लिंग पीतावर अयति नो ग्रहण कर्यो परंतु कोई संयमी गुरु नी पासे चारित्रोप संपत् अर्थात् फरी ने दिक्षालीधी नहीं, अने जेनी पासे दिक्षा ग्रहण करवानुं कहे छे ते एमना गुरु पोते मुख थी कहता के मैं संयमी नहीं हुं ॥ इत्यादि" मंगल दंडी जी, तुम्हारे धन विजय जी दंडी के उपर्य्युक्त लेख से यह बात स्पष्ट सिद्ध है कि तुम्हारे परम पूज्य गुरु दंडी आत्माराम जी (आनंद विजय) जी को कोई संयमी गुरु न मिले ? तो दंडी जी आप अपने दूषण को व्यर्थ हमारे सिर क्यों लगाते हो !!

सोलहमें छंद के दूसरे और तीसरे चरणमें लिखा है

अपने आप बना जो ढूंढा लव जी आदि कहाया है। बांधा मुख पर पाटा सतरां वीस में पारो गाया है

उत्तरः-मंगल दंडी जी, लव जी यति ने जो विक्रम संवत् १७२० के लगभग यतियों के कुलिंग को त्याग कर जिनागमानुसार क्रिया करनी स्वीकार करी और जो

अनादि से चला आता है सो साधु वेष भी धारणकिया ऐसा अभिप्राय श्रीमती सती पार्वती जीने 'ज्ञानदीपिका" में प्रकट किया है सो तो ' इतिहासों के देखने से सत्य ही प्रतीत होता है, परंतु ' अपने आप वना जो ढूंढा लवजी आदि कहाया है यह तुम्हारा लेख नितान्त मिथ्या है,' क्यों कि लवजी मुनि अपने आप पाटे नहीं विराजित हुए थे इस लिये उन महर्षि की पट्टावली 'ज्ञानदीपिका' में जो उक्त सती जी ने लिखी है वह पढ कर तुम्हें अपना भ्रम दूर करना चाहियें।। ??

सतरह मे छल छंद के पहिले और दूसरे चरण में मंगल दंडी जी तुम लिखते हो कि

नम्र।-नये कपड़े को पसली तीन रंग फरमाया है, सूत्र निशीथ में देख पाठ तूं क्यों इतनां घवराया है॥

उत्तरः-वाह ! दंडी जी यह तो आप ने खूबही वम्बूल वृक्ष के वृन्ताक फल लगाये हैं अहो जिनागमों के अनभिज्ञ दंडी श्री " निशीथ " सूत्र में तो "तीन पसली रंग से साधु को वस्त्र अवश्य रंग ने" ऐसा पाठ कहीं भी नहीं लिखा है; किंतु निशीथ सूत्र के १८ में उद्देशे में " वस्त्र

रंगने वाले साधु को 'चउमासिय' प्रायश्चित और ऐसा तो पाठ अवश्य है; यतः ?

जे, भिक्खू णव ए से वत्थे लद्धे निकट्टु, लोधे णवा, कक्केणवा, एहःणे णवा, पउम चुरणेणवा, बरणेणवा, जाव उवहं तेवा, साइज्जइ. तंसेव माणे आवज्जइ चाउमासियं परिहार ट्ठाणं उग्घाइयं:

इस का भावार्थ यह है कि, जो कोई साधु नवीन वस्त्र लेके, लोध्र, तथा कक्क आदि द्रव्यों से रंगे अथवा रंगते हुये को भला जाने तो उस को लघु चउ मासिय प्राय-श्चित आवे; और मंगल दंडी जी. इसही बात को पुष्ट करने के लिये तथा तुम जैसे मूढ नरों की कुतर्कों का खंडन करने के लिये, गणधर महाराज श्री "आचारांग जी" सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध के विषे वस्त्रों का रंगना तथा रंगीन वस्त्र साधु को पहिरने का स्पष्ट तया निषेध करते हैं; देखो मंगल दंडी जी, तुम्हारे ही मकसुदाबाद निवासी राय धनपत सिंह बहादुर के छपाये हुवे आचारांग जी सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध की पृष्ठ ३६६ पंक्ति ६ से

अहा, परिग्गाहिया इं वत्थाइं धारेज्जा, णो रएज्जा णो धोवेज्जा णो धोत रत्ताइं वत्था इं धारेज्जा

पुनःदेखो उक्त श्रुतस्कंध की पृष्ठ ३६५ की पंक्ति १६ से दीपिका, टीका इसी पाठ की

यथा परिगृहीतानि धारयेत् न तत्रोत्कर्षण धावनादिकं परिकर्म कुर्य्यादित्याह णो धोवयेत् प्रासुकोदके नापि प्रक्षालयेत् गच्छवासि नोहि अप्राप्त वर्षादो ग्लानावस्थायां वा प्रासुकोदके न यतनया धावन मनुज्ञातं न तु जिन कल्पिकस्य नो धोव रत्ता इन्ति न च धौत रक्तानि वस्त्राणि धारयेत् पूर्व धौतानि पश्चाद्रक्तानि

अब कहिये दंडी जी, आप का वह तीन पसली रंग कहां उड गया ॥ तथा ' उतराध्ययन " जी मूत्र के तेवीसमे अध्ययन में वीर शासनानुयायी साधुओं के श्वेत वस्त्र कहे हैं, परन्तु पीतादिक रंगीन वस्त्र पहिनने नहीं कहे तथा विवेक विकल दंडी जी तुम्हारे ही मान्य गच्छाचार पइन्ना प्रमुख में भी पीतादिक रंगीन वस्त्र पहिरने वाले साधु, साध्वीओं को गच्छ की मर्यादा से वाहिर कहे हैं :

देखो मंगल दंडी जी, उक्त वार्त्ता को तुम्हारे ही सहयोगी दंडी धन विजय जी ' चतुर्थ स्तुति निर्णय शंकोद्धार ' की पृष्ठ ८१ की पंक्ति ८ मी से लिखते हैं कि **श्री गच्छाचार** पयन्ना प्रमुख मां श्री वीर शासन मां श्वेत मानो पेत वस्त्र नो त्याग करी, पीतादिक एटले रंगेला वस्त्र धारण करे तेने गच्छ मर्यादा वाहिर कह्या छे ॥

॥ ते पाठ गाथा ॥ जत्थय वारडियाणं तत्तडिआणं च तहय परिभोगो मुत्तुं सुक्किल वत्थं कामेरा तत्थ गच्छं मि ॥ ८९ ॥ टीका ॥ तथा यत्र गच्छे वारडियाणं ति रक्त व-स्त्राणां तत्तडिया णंति नील पीतादि रंजित वस्त्राणां च परिभोगः क्रियते किं कृत्वेत्पाह मुक्त्वा परित्यज्य किं शुक्ल वस्त्रं यति योग्यावर मित्यर्थः तत्र कामे रातिः का मर्यादा न काचिदपीति द्वे अपिगाथा छंदसी ॥ ८९ ॥

अर्थः-भगवंत श्री महावीर वर्द्ध मान स्वामी गौतम गणधर ने कहे छे, हे गौतम हे गणधर, जे गच्छ मां रक्त वस्त्रोने अने नीला पीला रंगित पहेरेछे. एटले रंगेलां वस्त्र भोगवे, शुं करी ने तेकहे छेके, जती ने जोग्य वस्त्र सुपेत छे, तेतो न पांगरे, अने रंगेलां वस्त्र पांगरें, ते गच्छमां, सीम मर्यादा. एटले ते गच्छ मर्यादा रहित छे ॥ वली साध्वीयों ना अधिकार मां पण लखे छे ॥ गाणि गोअम अज्जाओ वि अ से अवत्थं

विवज्जिउं सेवए चित्त रूवाणी न सा अज्जा विआहिआ ११२ टीका ॥

हे गणिन गौतम या आर्या उचितं श्वेत वस्त्रं विवर्ज्य चित्र रुपाणि विविध वर्णानि विविध चित्राणि वा, वस्त्राणि सेवते उप लक्षणात्पात्र दंडाद्यपि विचित्र रुप सेवते सा आर्या न व्याहृता न कथितेति विषमा क्षरेति गाथाच्छंदः ॥ ११२ ॥

अर्थः- हे गणधर गौतम जे साध्वी जोग्य वस्त्र सुपेत एटले धोलां वस्त्र, तेहने वर्जी ने अनेक प्रकार नां बीजां रंगेला वस्त्र पेहरे ए कहेवाथी पातरां दांडां प्रमुख उपगरण रंगेलां राखे तो, ते आर्यामें कही नथी एटले जे साध्वी पीलां प्रमुख वस्त्र पातरां दांडा रंगेला राखे तो ते साध्वी नथी. एह अजोग्य वेशनी धरनारी ने में साध्वी कही नथी साध्वी तो श्वेत वस्त्र पेहरे तेहज छे ॥ तथा मंगल दंडी जी, तुम्हारे ही सहयोगी दंडी धन विजय जी " चतुर्थ स्तुति निर्णय शंकोद्धार " की पृष्ठ १७४ की पंक्ति ६ मी से पीतादि रंगीन वस्त्र पहरने वाले साधुओं को, "जैन लिंग के विरोधी, तथा विडंबक अर्थात् भांड चेष्टा करने वाले" स्पष्ट तया बतलाते हैं: वह लिखते हैं कि,—

जैन लिंग नो विरोधी एवी रीते थाय छे के श्री वीर

शासन ना साधुवों ने श्री जैन शास्त्र में सपेत मानो पेत जीर्ण प्राय कपड़ां धारण करवां कह्या छे ने पीला प्रमुख कपड़ां धारण कर वा वाला ने महा प्रभाविक स्थिरा पद्रगच्छैक मंडन आचार्य श्री वादि वेताल शांति सूरि जी ए उत्तराध्ययन नी ब्रहद्वृत्तिमां विडंबक ' एटले भेष विगोववा वाला आदि शब्दे भांड चेष्टा ना करवा वाला कहच्या छे.

ते पाठः ॥ अत्र च द्वितीयं द्वारं लिंगत्ति लिग्यते गम्यते अनेनायं बृतीति लिंगं वर्षा कल्पादि रूपो वेप स्तदधि कृत्याय "अचेल" इत्यादि प्राग्व द्वाख्यात. मेव नवरं "महामुणित्ति" महा मुने पठंति च "महायसात्ति' लिंगे द्विविधे अचेलक तया विविध वस्त्र धारक तया च द्विभेद इति सूत्र त्रयार्थः ॥

"इच्छि यत्ति" ईष्ट मनुमतं पार्श्ववर्तीर्थ व्रद्धर्द्ध मान तीर्थ कृद्भ्यामिती प्रक्रमो वर्द्ध मान विनेया नाहिं रक्तादि वस्त्रा नुज्ञाते वक्र जड़त्वेन वस्त्र रंजना दिषु प्रवृत्ति रति दुर्निवारा स्यादिति न तेन तदनुज्ञातं पार्श्व शिष्यास्तु न तथेति रक्तादीना मपितेना नु ज्ञात मिति भावः किंच प्र-त्ययार्थं चामी व्रतिन इति प्रतीति निमित्तं कस्य लोक स्या न्यथा हि यथा भि रुचितं वेष मादाय पूजादि निमित्तं विडंब

कादयोपि वयं व्रतिन इत्याभि धीरन् ततो व्रतिष्ठपि न लोकस्य व्रतिन इति प्रतीतिः स्यात् किं तदेव मित्याह नाना विधि विकल्पनं प्रक्रमान्नाना प्रकारोपकरण परि कल्पनं नाना विधं हि वर्षा कल्पा द्युपकरणं यथा दद्याति श्वेव संभव तीति कथं न तत्प्रत्यय हेतुः स्याचाथा यात्रा संयम निर्वाह स्तदर्थं विनाहि वर्षा कल्पादिकं वृष्टयादौ संयम बाधैव स्यात् । ग्रहणं ज्ञानं तदर्थं च कथं चिच्चित्त विप्लवो त्पता वपि गृहणातु यथाहं व्रतीत्ये तदर्थं लोके लिंग स्ये वेप धारणम्य प्रयोजनं मिती प्रवर्त्तनं लिंग प्रयोजनं। ॥ छ ॥ अथस्युपन्था से "भवे पइन्नाउत्ति" तु शब्द स्यं वंका रार्थत्वा द्भिन्न क्रमत्वा च भवेदेव प्रतिज्ञानं प्रतिज्ञा भ्युप गमः प्रक्रमा त्पार्श्व वर्द्धमान योः प्रतिज्ञा स्वरूप माह "मोक्खस्स ञ्भूय साहणाति' मोक्षस्य सद्भूतानि च तानि तात्विक त्वात्सा धनानि च हेतुत्वात् मोक्ष सद् भूत साधना नि कानी त्याह ज्ञानं च यथावद् बोधो दर्शनं च तत्वरुचि श्चारित्रं च सर्वत्र सावद्यवि रति रेव इत्यव धारणे स च लिंगस्य मुक्ति सद्भूत साधनतां "व्यवच्छिन्नति' ज्ञानाद्येव मुक्ति कारणं न तु लिंग मिति श्रूयते हिं भरता दी नांलिंगं विनापि केवल ज्ञानोत्पत्ति निश्चय इति निश्चय नये विचार्ये व्यवहार नये तुलिंग स्यापि कथं चिन्मुक्ति सद्-

भूत हेतु तंष्यत एव तदयमभिप्रायो निश्चये तावलिंग प्रत्याद्रियत एव न व्यवहार एव तूक्त हेतु भिस्तदि च्छनी-तितद्भेदस्य तत्वतो ऽकिंचित्कर त्वान्न विदुपा वि प्रत्यय हेतुता शेपं स्पष्ट मिति सूत्रार्थः ॥

भावार्थः ॥ वली इहां वाजु द्वार लिंग नु छे लिंग ने स्युं के, जाणिए जिणे करी ने एटले ए लिंग करी ने जा-णीए जे ए व्रती छे तेहने लिंग कहीये एटले वर्षा कल्पादि रूप वेष तेह ने अधिकार करी ने कहे छे अचेल इत्या-दिक नो अर्थ पूर्वे कह्यो छे पण ते मां एटलो विशेष "महा मुनि महा जसवंत" ते नो लिंग वे प्रकारे एकतो अचेलक पणे करी ने बीजु अनेक प्रकार ना वस्त्र धारवा पणे करी ने वे भेद छे एह मां लिंग ते वस्त्रादिक धारवानु कह्युं एटले श्वेत मानो पेत वस्त्र धारे ते लिंग महावीर स्वामीना साधु नु छे, अनेक प्रकार ना वहु मोघा पंच वर्णा वस्त्र धारे ते लिंग पार्श्वनाथ जी ना साधु नु छे अने महा वीर ना साधु जो रंगेला तथा वहु मोघां वस्त्र पहिरे ते तेहने कुलिंगी कहिये-इहा कोई कहेशे जो रंगेलां वस्त्र पहिरवा थी कुलिंग कहो तो पार्श्वनाथ स्वामी ना साधु कुलिंगी थया तेह ने कहिये एम न बोल वुं तेहुने तो पांच वर्णा पहिरवा नो ज आचार छे जेहुना आचार में तथा

आज्ञामें चाले ते कुलिंग न कहिये माटे ते कुलिंग न होय हवे जे लिंग मां स्युं छे तेहनो उत्तर वृत्तिकार कहे छे जे पूर्वे पार्श्वनाथ स्वामी ना साधुवों ने सचेल पणु अने वर्द्ध मान स्वामी ना साधुवों ने अचेल पणु मान्यु तीर्थ- करों ए ते वाछित छे ए टले एमांग इम ज जोइये एह मां शंकान करवी अने जो कोई इम कहे एह मां शु छे तेने कहे छे जो ए अधिकार इम न मानिये ने वर्द्धमान स्वा- मी ना चेला ने रंगवानी मर्याद कहिये तो वर्द्धमान स्वामी ना साधु वक्र जड छे ते सदा रंग वानुज करता रहे ए दोप प्रवर्त्ति मिटाडवी अति काठिण थाय ते माटे एहुं ने वस्त्र रंग वुं सर्व था वर्ज्यु, अने रंगेलु वस्त्र धारवुं पण पूर्वे निषेध. कर्युं छे अने पार्श्वनाथ जी ना शिष्य एहवा नथी माटे तेहुंने रंगेला वस्त्रनी आज्ञा आपी ऋजु प्राज्ञ पणा थी ए परमार्थ छे वली कहे छे के लिंग मां शुं छे तेहनो परमार्थ देखाडे छेके लिंग थी लोको ने प्रतीत उपजे जे ए साधु छे अने जो लिंग न देखाडिये तो मन मां आवे ते हवो वेप करी ने पूजा ने अर्थे भांड प्रमुख पण कहे जे अमे पण साधु छीए ते माटे लोक मां ए साधु छे एहवी प्रतीति न थाय केम के अनेक प्रकार ना विकल्प एटले नाना प्रकार ना उपगरणनी कल्पना अधिकार थी जाणवा मां आवे के वर्षा कल्पादिक उप गरण साक्षात् साधु ने ज होय एटले स्वेत मानो पेत कंवलादिक उपगरण तो यति ने ज होय

अने रंगेला प्रमुख उपगरण भांडा दिको ने होय एह थी प्रतीति केम न होय एटले होय ज ए प्रयोजन लिंग देखाडवानु छे तथा संयम निर्वाहने अर्थे वस्त्रादिक राखे, न राखे तो वृष्टि वर्षतां संयम न बाधा ज थाय तेहने अर्थे लिंग धारे तथा कोई वखते चित्त चले तो लिंग धारेलुं होय तो जांणे के हुं साधु थयो छुं माटे अकार्य किम करुं एटला कारण माटे लिंग नुं राखवानुं प्रयोजन छे एटले लिंग धारवानु प्रयोजन देखाडयुं हवे कोइ निश्चय नयने अवलंबन करी ने वेष ने निषेधे तेहने कहे छे " अथे त्युपन्यासे" इत्यादिक नो भावार्थ एम छे के पार्श्वनाथ स्वामी अने वर्द्धमान स्वामी ए बेहुने ए प्रतिज्ञा छे ने कहे छे के मोक्ष नुं सत्य साधन निश्चे नये तो ज्ञान दर्शन चारित्र ज छे ने लिंग ने मुक्ति भूत साधन पणुं न थी मांनता केम के ज्ञानादिक छे तेही ज मोक्ष नु सत्य कारण छे पणलिंग मोक्ष नुं कारण न थी केम के भरतादिकों ने लिंग विना केवल ज्ञान उपज्युं एम सांभालिये छीए एम निश्चय नयना विचार मां तो लिंगनी कांइ पण जरूर न थी पण एकांत मांनवा थी व्यवहार नो लोप थाय तो शास्त्र नोच्छेदः पाप लागे ते माटे व्यवहार नयना मत मां तो लिंग ने पण मोक्ष सद्भूत कारण पणुं ज छे एटले निश्चे मां तो ज्ञान दर्शन चारित्र ज मोक्ष ना कारण पण व्यवहारे लिंग पण मोक्ष

नुं कारण छे तेमज निश्चय नयने मते पण एज अभिप्राय छे जे लिंग मत्ये तो आदरज करवो पण ते आदर केवल व्यवहार थी ज नथी इच्छता केम के तत्व थी व्यवहार निश्चयनो भेद विद्वान ने विप्रत्यय नो हेतु कांई पण थतो ज नथी वस्तुताए ए नय अपेक्षाए एकज छे ए भावार्थ स्पष्ट छे एटले महावीर स्वामी ए लिंग कह्युं ते अने पार्श्व नाथ स्वामी ए लिंग कह्युं ते पात पोताना तीर्थ मां मोक्ष नुं कारण छे माटे वीर ना साधु जो नाना प्रकार ना रंगेला तथा मूल्य थी बहु मोघां वस्त्र धारण करे तो भाड लिंग थाय अने कुलिंग थाय एम जणाव्युं छे तथा लिंग मां स्युं छे तेह नुं कारण पण जणाव्यु ॥ एवी रीत श्री आचारांग सूत्र १ आचारांग वृत्ति २ श्री सूयगडांग सूत्र ३ श्री सूयग डांग वृत्ति ४ श्री निशीथ सूत्र ५ श्री निशीथ चूर्णि ६ श्री ओघनिर्युक्ति मूल ७ श्री ओघ निर्युक्ति टीका ८ श्री आवश्यक निर्युक्ति मूल ९ श्री आवश्यक निर्युक्ति वृत्ति १० श्री पंचाशक मूल ११ श्री पंचाशक टीका १२ श्री ठाणांग सूत्र १३ श्री ठाणांग सूत्र वृत्ति १४ श्री गच्छा चार पयन्ना सूत्र १५ श्री गच्छा चार पयन्ना वृत्ति १६ पिंड निर्युक्ति मूल १७ पिंड निर्युक्ति वृत्ति १८ श्री भगवती सूत्र १९ श्री भगवती सूत्र वृत्ति २० कल्प सुबोधिका श्री विनय विजय जी उपाध्याय कृत २१ श्री दशठाणा

मूल २२ श्री दश ठाणा वृत्ति २३ इत्यादिक ग्रंथों मां श्री वीर शासन ना साधुओं ने सपेत मानो पेत जीर्ण प्राय वस्त्र धारण करवां कह्यां छे अने वर्षा काल प्रमुख कारणे धोववा नु विधान कह्युं छे पण रंग वानु विधान कह्य नथी तथा श्री निशीथ सूत्र मां लोद् कर्क प्रमुख द्रव्य, वस्त्र पात्र ने लगाव वां कह्यां ने श्री निशीथ चूर्णि मां मदिरा प्रमुख दुर्गंध टालवाने कह्यां छे, पण निरंतर गाढा गाढ कारण विना भेष वदलाव वाने अर्थे कह्यां नथी इत्यादिक तर्क्क वितर्क समाधान सहित पूर्वोक्त सूत्र ग्रंथों ना पाठ, भावार्थ सहित अस्मत् कृत स्तुति निर्णय विभाकर थी जांणवो एम पूर्वोक्त अनेक शास्त्रना अभिप्राय थी सपेत वस्त्र त्यागी **पीला कपड़ा प्रमुख धारण करे तेने जैन लिंग नो विरोधी जाणवा** " अब कहिये मंगल दंडी जी, जो शठ ऐसा कहते है कि. " नये कपडे को तीन पसली रंग फरमाया है देख पाठ सूत्र निशीथ में ' उन के मुखपर तुम्हारे ही सहयोगी दंडी धन विजय जी का उपर्य्युक्त लेख चपेटा के सदृश है या नहीं? और भी एक तीक्ष्ण चूरण इस व्याधि को हटाने के लिये लीजिये कि तुम्हारे शास्त्र विशारद जैना चार्य्य दंडी धर्म्म विजय जी भी अपने रचित " पुरुषार्थ दिग् दर्शन " की पृष्ठ ५ की पंक्ति

१६ मी से स्पष्ट पने यह लिखते है कि "अगुरु लोग रंगीन वस्त्रों को धारण कर जगत को ठगते हैं" जिस का स्पष्ट अर्थ यह होता है कि केवल जगतको ठगने ही के लिये अगुरु लोग रंगीन वस्त्रों को धारण करते हैं; परंतु मंगल दंडी जी, धर्म्म विजय जी जैसे पुरुषों का यह कहना कि " अगुरु लोग रंगीन वस्त्रों को धारण कर जगत को ठगते है " केवल कथा ही के वैगण रह गये हैं अन्यथा धर्म्म विजय जी स्वयं रंगीन वस्त्र क्यों धारण करते? आश्चर्य्य तो इस बात का है कि जो शास्त्र विशारद जैनाचार्य्य के अलंकार से अलंकृत हैं उन का इस तनिकसी लोकोक्ति पर भी ध्यान नहीं पहुंचा कि,

कहते हैं करते नहीं मुंह के बड़े लबार ॥

रे मंगल दंडी, जब कि तेरे ही अनेक मान्य ग्रंथों में तो वीर शासनानुयायी साधुओं को पीतादि रंगीन वस्त्र पहिनने मनें करे हैं और तू अपनी "चपेटी का त्रिशिका" में पीतादि रंगीन वस्त्र साधुओं को पहिनना सिद्ध करता है; अत एव इस से तो यह स्पष्ट ही सिद्ध है कि, तू दंडी अवश्य वीर भगवान का अनुयायी नहीं, हां यदि कोई महा पाखंडी दंडी होवे तो तेरा यह पाखंड तुझै ही मुबारिक रहे

रे हिंसा धर्मी ढंडी, मतगन्ह में इंद के नोमरे चरण में तथा तिस के नोट में तूं लिखता है कि

इसी सूत्र में देख ले बाबत रजोहरण क्या गाया है ॥

नोटः-श्री निशीथ सूत्र में फरमाया है कि जो साधु साध्वी प्रमाण रहित रजोहरण रखे या रखने वाले को मदद देवे उसे दंड आता है तो अब ढंडियों को ३२ सूत्रों के मूल पाठ में रजोहरण का प्रमाण खोजना चाहिये ।

उत्तरः रे ढंडी, निशीथ सूत्र के पांचवें उद्देशे में जो वीर पिता ने रजोहरण के विषय में फरमाया है उसे तो हम सर्वदा ही सत्य मानते हैं और इसी से जैन साधु प्रमाणाधिक्य रजो हरण नहीं रखते हैं; परंतु रे हिंसा रत ढंडी, बत्तीश सूत्रों के मूल पाठ में, हम को रजोहरण के प्रमाण की खोज करने की क्या आवश्यकता है ? क्यों कि खोज तो वह करे कि, जो नहीं जानता होवे, रे विवेक विगत ढंडी, हम ने तो रजोहरण का प्रमाण मूल सिद्धांतानुसार ही गुरु मुख से ठीक ठीक धारण कर रक्खा है

अत एव हमें तो खोज करने की आवश्यकता नहीं है; यदि तुझ दंडी को रजोहरण का प्रमाण जानना है तो हम से साक्षात् विनय पूर्वक पूंछ, यदि हम तुझे ज्ञान देने के योग्य समझेंगे तो वतलाय देवेंगे ?? अठारहवें छल छंद के प्रथप चरण में मंगल दंडी जी, आपने मिथ्यात्व रूप भंग की तरंग में यों अडंग की वडंग लेखनी चलाई है कि

पप्पा-पांच कल्याणक जिनवर जिन आगम में गाया है ॥

उत्तरः-दंडीजी धन्य हैं आप जैसे सुलेखकों को कि, जिन की लेखनी से जो भी लेख लिखे जाते हैं सो प्रायः अशुद्धि, मिथ्या, गर्व प्रदर्शक और कलुषोत्पादक आदि गुणों से पूरित लिखे जाते हैं ? क्या दंडी जी आप का जन्म इसी लोकोक्ति को चरितार्थ करने के लिये हुआ है कि

लिख न सकें, चाहें हम शुद्ध,
पर कर सकते हैं हम युद्ध ?
लेखक छोटे वड़े तमाम,
डरते हम से आठों याम ??

मंगल ढूंढी जी, जिनोक्त ३२ सिद्धांतों के मूल पाठ में ऐसा कहीं भी नहीं कहा है कि " जिनवर के नियमा पंच कल्याणक होते हैं," यद्यपि चउदह तीर्थ करों के गर्भादि कार्य्य एक एक नक्षत्र में ही हुए हैं तिनका वर्णन श्री " स्थानांग " जी सूत्र के पंचम स्थान में लिखा है, परन्तु तिन गर्भादिक कार्य्यों को तहां " कल्याणक " नहीं कहे हैं; यतः ॥ "पउ म प्पभे णं अरहा पंच चित्ते होत्था;

तंजहा:- चित्ताहिं चुए, चइत्ता गब्भं वकंते; चित्ताहि जाए; चिताहिं मुंडे भवित्ता आगारा ओ अणगारियं पव्वइए; चित्ताहिं अणते- अणुत्तरे णिव्वाघाए- निरा वरणे- कसिणे पडि पुण्णे- केवल वर णाण दंसणे समुप्पण् णे; चित्ताहिं परि णिव्वुए; ॥ पुप्फ दंतेणं अरहा पंच मूले होत्था:- मूले णं चुए, चइत्ता गब्भंवकंते; एवं चेव, ॥ एवमेते णं- 'अभिलावे णं" इमा ओ गाहा ओ अणु गंतव्वा ओ = " पउम प्प भस्स चित्ता, मूलो पुण होइ पुप्फ दंतस्सः पुव्वा साढा सीयलस्स, उत्तर विमल स्स भद्दवया ॥ १ ॥ रेवइ य अणंत जिणे, पुस्सोध म्मस्स संति णो भरणी; कुंथु स्सकात्तिया ओ, अरस्स तह रेवइए ॥ मुणि सुव्वय स्स सवणो, आस्सिणि णमि णोय नेमिणो चित्ता; पास स्स विसाहा, पंचय हत्थुत्तरे वीरो ॥ २ ॥ समणे भगवं म-

हावीरे पंच हत्थुत्तरे होत्था, तं जहा:- हत्थुत्तराहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कंते; हत्थुत्तराहिं गब्भा ओ- गब्भं साहरिए; हत्थुत्तराहिं जाए; हत्थुत्तरा हिं मुंडे भवित्ता, 'जाव' पव्वइए; हत्थुत्तरा हिं अणंते- अणुत्तरे 'जाव' केवल वर णाण दंसणे समुप्पण्णे "

और मंगल ढूंढी जी श्री " आचारांग जी सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध के 'भावनाख्य' अध्ययन में महा वीर भगवान के गर्भादि पंच उत्तरा फाल्गुणी नक्षत्र में हुऐ कहे हैं; यतः । ते णं काले णं ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे पंच हत्थुत्तरे या वि होत्था:- हत्थुतराहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कते; हत्थुतरांहिं गब्भा ओ गब्भं साहरि ए; हत्थुतराहिं जाए; हत्थुतरा हिं सव्व ओ सव्वताए मुंडे भवित्ता आगारा ओ अणगारियं पव्वइ ए;हत्थुतराहिं कसिणे पडि पुण्ण अव्वाघाए निरावरणे अणंते अणुत्तरे केवल वरणाण दंसणे समुप्पण्णे" । परंतु यहां भी पाठ में गर्भादि पंच को कल्याणक नहीं कहे. पुनःएता दृश ही वर्णन "दशा श्रुत स्कंध" सूत्र के अष्टमा ध्ययन में कहा है परंतु तहां भी मूलपाठ में गर्भादिकों को कल्याणक नहीं कहे. पुनःतुम ढूंढीओं के ही मान्य "कल्प सूत्र" के मूल में भी कहीं गर्भादिकों को " कल्याणक" नहीं कहे

तथा मंगल दंडी जी "जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति" सूत्र में ऋषभ देव भगवान के गर्भादि पंच उत्तरा षाढा नक्षत्र में हुए कहे हैं, परंतु वहां के पाठ में भी गर्भादि पंच को "कल्याणक" नहीं कहा; अत एव मंगल दंडीजी, आपका यह लेख असमंजस है कि:- पांच कल्याणक जिनवर जिनआगम में गाया है; यदि दंडी जी तीर्थ करों के गर्भ जन्मादिकोंको आप कल्याणक ही मानने हो तो भले ही मानों इस मे हमारी कुछ भी हानि नहीं; क्यों कि तीर्थ करोंके जन्मादि लोक को हर्ष के कारण होने से कल्याण प्रद अवश्य हैं; परंतु तुम संख्या का नियम लिखते हो और इस पर भी संतोष न रख कर अपनी कल्पना को सिद्ध करने के लिये जिनागमों की मिथ्या साक्षी लिखते हो सो तुम्हारा निरा हट, और अज्ञान ही है:

क्यों कि दंडी जी, यदि तुम्हारे मन्तव्यानुसार तीर्थकरों के गर्भादिको को "कल्याणक" ही माने जाय तो भी पांच ही नहीं किन्तु अधिक भी होते हैं; देखिये दंडी जी श्री "जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति" सूत्र में यह पाठ लिखा है कि "उसभेणं अरहा कोसलिए पंच उत्तरा साढे अभिए छट्ठे होत्था; तंजहा: उतरा साढाहिं चुए, चइत्ता गब्भं वकंते; उत्तरा साढाहिं जाए; उत्तरा साढाहिं राया-

भिसे ए संपत्ते उत्तरा साढेहिं मुंडे भवित्ता, आगारा ओ अणगारियं पव्वइए; उत्तरा साढाहिं अणंते " जाव " केवल वरणाण दंसणे समुप्पणे; अभिइणा परिनिव्वुडे "
इस पाठ का भावार्थ यह है कि ऋषभदेव अरिहंत कौशलिक के पांच उत्तरा षाढा नक्षत्र में और छटा अभिजित् नक्षत्र में हुवा; वह ये कि: उत्तरा षाढा नक्षत्र में गर्भपने में उत्पन्न हुवे; उत्तरा षाढा नक्षत्र में जन्मे; उत्तरा षाढा नक्षत्र राज्याभिषेक हुवा; उतरा षाढा नक्षत्र में दीक्षित हुवे उतरा षाढा नक्षत्र मे केवल ज्ञान उत्पन्न हुवा और अभिजित् नक्षत्र में मोक्ष हुवे; अब दंडी जी, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र के उक्त पाठानुसार तुम को ऋषभ देव भगवान के छह "कल्याणक" मानने चाहिये, फिर पांच की संख्या का नियम लिखना यह तुम्हारा निरा अज्ञान नहीं है तो क्या है ? और दंडी जी तुम यह भी नहीं कह सकते हो कि " ऋषभदेव भगवान के राज्य भिषेक के सु अवसर पर इन्द्रादि देव महोत्सव करने को नंदीश्वर द्वीप मे नहीं गए हैं इस लिये वह कल्याणक नहीं है; क्यों कि दंडी जी किसी भी तीर्थ कर के गर्भ के समय इंद्रादिदेव नंदीश्वर द्वीप में अठाई महोत्सव करने को नहीं जाते तो फिर तीर्थ करों के गर्भ को तुम्हें कल्याणक नहीं मानना चाहिये देखो दंडी जी तुम्हारे ही

मान्य कल्प सूत्र में यह स्पष्ट लिखा है कि "महावीर भगवान जब देवा नंदा जी की कुक्षि में अवतेर उस की खबर इन्द्र को बहुत काल पीछे पडी; यदि गर्भ समय में इन्द्रादि देव महोत्सव करने को नंदीश्वर द्वीप में जाते होने तो बयाशी रात्रि तक शक्रेन्द्र महाराज अज्ञात अवस्था में क्यों रहते ! इस लिये यह स्पष्ट सिद्ध है कि तीर्थ करों के गर्भ के समय इन्द्रादि देव नंदीश्वर द्वीप में अठाई महोत्सव करने को नहीं जाते हैं ?? अठारहमे छंद के दूसरे तथा तीसरे चरण में तुम ने लिखा है कि इन्द्र सुरा सुर मिल कर उत्सव कर के आनंद पाया है, दीप नंदीश्वर भगवती जंबूदीप पन्नती बताया है

उत्तरः-ढंढी जी तुम्हारा उक्त लेख सत्या सत्य रूप होनें से असमंजस है; क्यों कि भगवती जी तथा जम्बूदीप प्रज्ञप्ती में ऐसा पाठ कहीं भी नहीं लिखा है कि तीर्थ करो के गर्भादि पांचों समयों पर इन्द्रादि देव नंदीश्वरद्वीप में अठाई महोत्सव करने को जाते हैं; हां जंबूद्वीप प्रज्ञप्ती सूत्र में यह अवश्य लिखा है कि ऋषभदेव भगवान के निर्वाण की महिमा करिके इन्द्रादि देव नंदीश्वर द्वीप में अठाई महोत्सव करने को गये इस बात को तो हम भी सत्य मानते हैं; और इन्द्रादि देव का यह जीत आचार भी मानते

हैं कि, तीर्थंकर भगवान के जन्म दीक्षा ज्ञान तथा निर्वाण के समय नंदीश्वर द्वीप में जाके अठाई (अठाई शब्द संज्ञा न्तर है परंतु नियमित आठ दिन का वाचक नहीं) महोत्सव करें। परंतु ढंढी जी इन्द्रादि देवों कृत तिस अठाई महोत्सव को हम निर्जरा का हेतु धर्म कृत्य नही मानते; क्यों कि इन्द्रादि देव नंदीश्वर द्वीप मे अठाई महोत्सव करने को केवल तीर्थ करों के ही जन्मादि समयों पर जाते हों यह नियम भी नही, किंतु चातुर्मासिक प्रतिपदादि पर्व दिवसों में तथा अन्यान्य हर्ष के समय पर भी जाते हैं और अठाई महोत्सव करते हैं; श्री " जीवाभिगम जी " सूत्र में यह स्पष्ट लिखा है कि,

" तत्थ णं बहवे भवण वई वाण मंतर जो इस देमा णिया देवा चाउमासिय पाडिवए सु संवच्छरे सु य अण्णेसु जिण जम्मण निक्खमण णाणु पात परि णिव्वाण महिमा सुय देवकज्जे सुय देव समुदए सुय देव समिता सुय देव समवाए सुय देव पयोयणे सुय एगंत उगहिया समु- वागया समाणा पमुदीय पकी लिया अट्ठाहिया ओ महा महिमाओ करे माणा पाले माणा सुहं सुहे णं विहरइ॥ एवं जीवा भिगम जी सूत्र के पाठानुसार स्पष्ट सिद्ध है कि इन्द्रादि देव तीर्थ करों के जन्मादि समयों से अतिरिक्त

अन्यान्य समयों पर भी अठाई महोत्सव करने को नंदी-श्वर द्वीप में जाते हैं अतएव इंद्रादि देवों का यह जीत आचार अर्थात् लौकिक कृत्य है कि नंदीश्वर द्वीप में जा कर अठाई महोत्सव करना परंतु निर्जरा का हेतु धर्म कृत्य नहीं। और न तीर्थंकर महाराज ने किसी सिद्धांत में इस अठाई महोत्सव को निर्जरा का हेतु धर्म कृत्य फरमाया है ??
मंगल दंडी जी, उगणीश में छल छंद में तुमने लिखा है कि.

फफ्फा—फेर नहीं भगवती में पाठ खुलासा आया है, जंघा चारण विद्या चारण मुनियों सीस नमाया है॥ अरिहंत अरिहंत चैत्यरु साधु तीन शरण फरमाया है

उत्तरः-दंडी जी, तुम्हारा यह लेख भी सत्या सत्य रूप होने से असमी चीन है; क्योंकि भगवती जी सूत्र में ऐसा खुलासा पाठ कहीं भी नहीं है कि अमुक समय पर अमुक जंघा चारण तथा अमुक विद्या चारण मुनि ने अमुक तीर्थंकरों की प्रति कृति को शीश नमाया है; अथवा आये काल में अमुक समय पर अमुक जंघा चारण तथा विद्या चारण मुनि अमुक तीर्थंकर की प्रति कृतिं को शीश नमावेंगे; तो दंडी जी मिथ्या साक्षी-

ढ २ के सत सिद्धांतों से लोगों की रुचि को क्यों ? हटाते हो. और यदि दंडी जी तुम कुछ पण्डित मानी पना रखते हो तो भगवती जी सूत्र का वह पाठ लिख कर प्रकट करो कि जिस में यह लिखा होवै कि, अमुक समय पर अमुक जंघा चारण तथा विद्या चारण मुनि ने अमुक तीर्थ कर की प्रति कृति को शीश नमाया है अथवा अमुक समय पर शीश नमावेंगे; अन्यथा तुम्हारा उत्सूत्र भाषण तुम्हें ही मुबारिक हो; हां भगवती जी सूत्र के वीश में शतक के नवम उद्देशे मे जंघा चारण अथवा विद्या चारण मुनियों की ऊंची तथा तिरछी गति का विषय भगवंतों ने अवश्य वर्णन किया है परंतु तहां तीर्थ करों की प्रति कृति को शीश नमाने का पाठ तो कहीं लेश मात्र भी नहीं लिखा है; ।

हॉ तिस वर्णन में " चेइया इं वंदइ ' ऐसा पाठ तो खुलाशा लिखा है; और उक्त सूत्र का गुरु गम्य से यह परमार्थ धारण किया है कि जंघा चारण अथवा विद्या चारण मुनि तहां नंदीश्वरादिक्षेत्रों में इरिया वही का पडि कमण करते हुए चतुर्विंशति स्तव [उक्कित्तन] का पाठ करते हैं, तथा भगवान के ज्ञान

दर्शन की स्तुति करते हैं; केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्रति सामयिक तथा भिन्न विषयिक है इसलिये गणधर महाराज ने " चेइयाइं " ऐसा बहु वचन का प्रयोग दिया है क्योंकि प्राकृत में द्वि वचन नहीं होता है किंतु " त्यादेर्भवे द्वि वचनं बहु वाक्य रूपं " इस प्राकृत व्याकरण के सूत्र से द्वि वचन के स्थान में बहु वचन ही होय जाता है;

परंतु तहां जंघा चारण तथा विद्या चारण मुनि यों के वर्णन में " चेइयाइं वंदइ " इस पाठ का यह संगतार्थ नहीं है कि, वह मुनि वहां पर तीर्थ करों की प्रतिकृति को शीश नमाते हैं क्योंकि रुचक द्वीप तथा मानुषोत्तर पर्वत पर तो सिद्धायतन तथा जिन पडिमा का जिनोक्त सिद्धांतों में कहीं जिकर भी नहीं है परंतु " चेइया इं वंदइ यह पाठ तो वहां भी कहा है, दंडी जी इस से स्पष्ट सिद्ध है कि " चेइयाइं वंदइ " इस पाठ का परमार्थ जो हमने उपरि लिखा है सोही सत्य है और जो तुम दंडी हठ से मानुषोत्तर पर्वत पर चार सिद्धायतन बतलाते हो तथा कल्पित द्वीप सागर पन्नत्ति और रत्न शेषर शूरि कृत क्षेत्र समास ग्रंथ की साक्षी देते हो सो भी व्यर्थ कपोल कल्पना-

ते हो क्यों कि कोई भी आर्य्य विद्वान उक्त दोनों ग्रंथों के सम्पूर्ण कथन को जिनोक्त सिद्धांतों की तरह प्रमाण नहीं मान सकते, हां कोई भी ग्रंथ क्यों न हो मगर अविरु द्धांश सब का मान्य है। दंडी जी, तुमसे हम ही यह पूछते हैं कि आपके रत्न शेषर शूरि जी को ऐसा कौनसा अतिशय ज्ञान प्रकट हुवा था कि जिस से उन्हों ने मानुषोत्तर पर्वत पर चार सिध्दायतन जाने, क्या वह तीर्थ कर तथा गण धरो से भी अधिक ज्ञानी थे? जो तीर्थ कर तथा गण धरो ने तो अंग तथा उपांगादि बत्तीश सत् सिध्दांतों में मानुषोतर पर्वत का वर्णन जहां कहीं भी किया है वहां चार सिध्दायतन नहीं फरमाये और आपके रत्न शेषर रि जी ने तो मानुषोतर पर्वत पर चार सिध्दायतन बतला ही दिये, वाह दंडी जीधन्य है आपके ऐसे अधिक प्ररूपक शूरियों को! पुनः दंडी जी, जो तुमने अरिहंत अरिहंतचैत्य, और साधु ये तीन शरणे माने हैं सो भी तुम्हारा अनाभिज्ञ पना ही है, क्योंकि श्री "भगवती" जी सूत्र में वस्तुतः दोही शरणे कहे हैं एक तो अरिहंत भग-वंत का और दूसरा अणगार महाराज का, दंडी जी, भगवती जी सूत्र के ३ शतक के दूसरे उद्देशे में शक्रेन्द्र महाराज ने दोनों की ही अत्या शातना मानी है परंतु तुम दंडी अरिहंत चैत्य शब्द का अर्थ प्रतिमा

कह कर जो तीसरा शरणा मानते हो सो नितांत मिथ्या है क्योंकि यदि अरिहंत चैत्य शब्द का अर्थ प्रतिमा होता और तीसरा शरणा उसका माना जाता तो शक्रेन्द्र महाराज तीसरी अत्याशातना प्रतिमा की भी मानते, परंतु उन्हों ने अरिहंत भगवंत और अणगार महाराज इन दोनो की ही अत्याशातना मानी है, तत्पाठः **तं महा दुक्खं खलु तहा रूवा णं अरहंता णं भगवंता णं अणगाराणाय अच्चासादणाया ए त्तिकट्टु** इस पाठ से यह स्पष्ट सिद्ध है कि जो तुम दंडी तीसरा शरणा तीर्थ करों की प्रतिमा का मानते हो सो नितान्त मिथ्या मानते हो ??

* * * * * *

बीस में छंद में दंडी जी तुमने लिखा है कि

बब्बा—बडे विवेकी देवा दशवै कालिक गाया है। शुद्ध मुनि को सीस नमावे नर गिणती नहीं आया है॥ तदपि मूढ़ ढूढ देवन की करणी कुछ नहीं भाया है।

उत्तरः-दंडी जी, तुम्हारा यह लेख द्वेष पूरित पूर्ण

अनभिज्ञ पने का है, क्योंकि दंडी जी सर्व देव विवेकी नहीं हो सकते अर्थात् जो सम्यक् दृष्टि वाले देव होते हैं सो ही विवेकी हो सकते हैं परंतु मिथ्या द्रष्टि वाले देव कदापि विवेकी नहीं हो सकते; और न मिथ्या द्रष्टि वाले देव शुद्ध मुनिओं को भक्ति युक्त धर्म वुद्धि से शीश ही नमाते हैं; दंडी जी, शीश नमाने की ता कथा ही दूर रखियै. क्योंकि मिथ्या द्रष्टि वाले देवोंने तो मुनिओं को शीश नमाने के बदले घोर उप सर्ग दिये है, संगम देव ने " महावीर " भगवान को छह मासतक घोर उपसर्ग दिये " पार्श्व " भगवान को कमठ के जीव मेघमाली मिथ्यात्वी देवने घोर कष्ट दिया ऐसा वर्णन तुम्हारे मान्य कल्प सूत्र में भी लिखा है

तो ऐसे देवताओं को तुम्हारे सरीखे अविवे की ओं के विना " वड़े विवेकी देवा " कौन कह सकता है,? और जो विवेकी देव है वो मुनियों को ही क्या ? परंतु ब्रह्मचारी ओं को भी शीश नमाते है, देखो 'उतराध्य-यन " सूत्र के सोलह मे अध्ययन की पंदरह मी गाथा को

देवदाणव गंधव्वा जक्ख रक्खस किन्नरा वंभ यारी णमंसंति दुक्करं जे करांतितं और विवेकी देव

जो तथा रूप के मुनि आदि को शीश नमाते हैं तिस में तिन देवों को नमस्कार पुण्य होता है इस कारण तिसको हम शुभ करणी मानते हैं; तथा नमस्कार करने की तो " राज प्रश्नीय " सूत्र में भगवंत ने स्पष्ट पने आज्ञा दी है परंतु नाटकादिक सावद्य करनी करने की भगवंतों ने आज्ञा नहीं दी अत एव नाटकादि सावद्य करणी को कोई भी आर्य्य विद्वान उपादेय नहीं मान सकते. यदि नाटकादि सावद्य करणी की कहीं भगवदाज्ञा लिखी होय तो तुम दंडीयों को वह पाठ प्रकट करना चाहिये और जो तुम दंडी यह कहते हो कि नाटक करने की जब सुरियाभ देव नें आज्ञा मांगी तब वीर भगवान मौन में रहे सो आज्ञा ही समझनी चाहियै यह तुमारा कहना अज्ञपने का है, रे अज्ञानी मौन रहने से आज्ञा नहीं समझी जाती किन्तु मौन रहने को तो ग्रंथ कारों ने एक तरह की नाहीं मानी है यतः भिउड़ी १ अद्धा लोयण २ चंचल दिट्ठिओ ३ परं मुहेण ४ मौनं ५ काल विलंबो ६ नकारो छविहो होई इति वचनात् यदि तुम दंडी विवेकी देवों की सर्व प्रकार की करणी को आदरणीय मानते हो तो तुमारे दंडी साधुके मृतक शरीर को गहने गांठे पहिनाय कर क्यों नहीं तिसकी निकासी करते हो, क्योंकि देवों ने तो ऋषभ देव भगवान के साथ जो दस हजार सु-

साधु मोक्ष प्राप्त हुए तिनके शव को अभूषण अलंकार पहिनाये तिसके बाद शिबिका मे स्थापन कर ले गए ऐसा जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में लिखा है यतः तएणं ते भवणवइ जाव वेमाणिया गणहरा सरीरगाइं अणगार सरीरगाईपि खीरोदगेणं एहावेति एहावेतित्ता सरसेण गोसीस चंदनेणं अणुलिंपति अणुलिंपतित्ता अरिहंताइं दिव्वाइं देव दूस जुयलाइं णियंसति णियंसातित्ता सव्वालंकार विभूसियाइ करेति, इत्यादि रे भाइ ओ देवता ओं की सर्व करणी साधु साध्वी श्रावक तथा श्राविका ओं को आदरणीय नहीं होती जिन करणी ओं की वीतराग ने आज्ञा दीहै वोही करणी साध्वादि मनुष्यों को करणी चाहिये, तुम दंडी देवों की हिरस क्यों करते हो देवतो नो संयमी हैं अवि रति है, तुमको तो अगण्य पुण्योदय से मनुष्य जन्म प्राप्त हुवा है जिसकी इन्द्र और अहमिन्द्र भी वांछा करते हैं अतएव तुमको मनुष्य जन्म के कृत्य करने चाहियें जिनकी जिनोक्त सिद्धांतों में आज्ञा है, ?

* * * * * * * *

आगे त्रिंशिका के इकवीशवें छल छंद में जो तूंने लिखा है कि-

भभ्भा- भरम पड़ा है भारी तत्व ज्ञान नहीं पाया है, हिंसा हिंसा मुख से रट कर आज्ञा धर्म भुलाया है, हिंसा दया का भेद न जाना जो आगम दर साया है.

उत्तरः- यह लेख भी तेरा उद्दंड पने का है रे हिंसा रसिक दंडी, भारी भ्रममें तो तूंही पड़ा हुआ है जो हिंसा मयी धर्म को मानता है और तुझेही तत्वज्ञान नहीं प्राप्त हुवा है जो तूं प्रतिमा पूजन में अमित त्रश तथ स्थावर जीवों की हिंसा करके निर्जरा मानता है, हमको तो तत्व ज्ञान की प्रप्ति वीतराग के वचनानुसार अवश्य हुई प्रतीत होती है जो कि हम दयामयी धर्म को मानते हैं और यथा शक्ति भावना युत पंच महा व्रत रूप धर्म को पालते हैं और पलवाते भी हैं. यही तत्व ज्ञान ऋषभदेव भगवान ने सूत्र जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति में फरमाया है यतः तएणं भगवं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण २ पंच महव्वायाइं सभावणगाइं छज्जीव निकाए धम्मं देस माणे विहरइ, तथा वीर भगवान ने भी सूत्र उववाइ में यही तत्व ज्ञान फरमाया है कि पंच महा व्रत रूप धर्म जो साधु का है तिसके धारण करणे को तथा द्वादश विध जो गृ-

हस्था का धर्म है तिसके धारण करने को साव धान हो ओ, तथा समस्त ज्ञान का सार भी भगवंत ने सूयगड़ांग सूत्र में यही फरमाया है कि किंचित् भी हिंसा नहीं करे यतः एयं खु णाणीणो सारं जं न हिंसइ किंचणं॥ अहिंसा समयं चेव एतावत्तं वियाणिया इति-वचनात् अबहम,दंडी तुझसे यह पूंछतेहैं किवह कौनसा तत्व ज्ञानहै जो हमको नहीं प्राप्त हुवाहै क्यों प्रतिमा पूजनमें हिंसा करना और तिसको धर्म मानना यही अथवा और कुछ, ? तथा हिंसा की प्राधान्यता भी तुम दंडी ही मानते हो क्योंकि हिंसा विना धर्म नहीं होता हिंसा विना धर्म हो ही नहीं सकता इस प्रकार वारं वार तुम दंडी रटते हो इससे तुमनें ही वीतराग की आज्ञा जो दया पालने की है तिस दयामयी धर्म को भुलाया है, रे अज्ञ दया धर्म तो सूत्र उतरा ध्ययन के पंचम अध्ययन की तीसमी गाथा में कहा है " दया धम्म स्स खंति ए " इति वचनात् परन्तु कहीं जिनोक्त सूत्रों में " आणा धम्म " ऐसा पाठ कहा है तो तूं बता, रे अज्ञा परमोत्कृष्ट पर्वाधिराज श्री पर्युषण पर्व है तिस पर्व दिवसके विषें भी तुम दंडी प्रतिमा पूजना दिमें षट् काय के जीवों की हिंसा करते हो तथा कराते हो इसके सिवाय क्या आज्ञा धर्म भुलाना बाकी रह गया है, ?

रे दंड़ी, हिंसा दुर्गतिदायिनी है. और दया निर्वाण पद दायिनी है. ऐसा सदुपदेश तो भव्य जनों को हम वारंवार अवश्य करते हैं सो निःसंदेह वीतराग की आज्ञानुकूल ही करते हैं, वीतराग देव ने "प्रश्न व्याकरण" सूत्र के प्रथम आश्रव द्वार में प्रकट पने हिंसा को दुर्गति दायिनी कही है और रे अज्ञानी दंड़ी, तेरे हुकम मुनि ने भी "अध्यात्म प्रकरण" ग्रंथ की पृष्ठ ५०५ मी से लिखा है यदि तेरे नेत्र होय तो उसे देख के भ्रम मिटाय लेना चाहिये तथा वीतराग देव ने "सूत्र कृतांग" सूत्र में प्रकट फरमाया है कि दया वरं धम्म दुगंछ माणा

वहा वहं धम्म पसंसमाणे! एगांपि जे भोययई असीलं णिव्वोणि संजाइ कओ सुरे हिं !!

अर्थात् दया रूप श्रेष्ठ धर्म की तो निंदा करते हैं, और वधावध रूप हिंसा धर्म की जो प्रशंसा करते हैं. सो जीव नरक में जाते हैं !! और दया भगवती की परि पूर्ण सेवा करने से अनंत सम्य क् द्रष्टि जीवों ने मुक्ति पद पाया है, देख दंडी स्वयं वीतराग देव ने "उत्तराध्ययन" सूत्र के १८ में अध्ययन की ३५ मी काव्य में प्रकट पने यह फरमाया है कि;

सगरो वि सागरंतं भरहं वासं नराहिवो ?
इस्सरियं केवलं हिच्चा दयाए परि णिव्वुए ??

अर्थात् भरत क्षेत्र के नराधिप सगर चक्रवर्ति ने दया ही से मोक्ष प्राप्त की ?? दंडी जी, जब सगर चक्रवर्ति दया ही से निर्वाण पद को प्राप्त हुवा तो, " वीतराग देव की आज्ञा दया पालने ही की है, " यह तत्व वीतराग के उपर्युक्त वचनों से स्पष्ट सिद्ध है; रे हठी दंडी, दया पालना सो ही वीतराग की आज्ञा का पालना है, क्या आज्ञा दया धर्म से बाहिर है ? दया धर्म और आज्ञा धर्म में वस्तुतःकुछ भी अंतर नहीं है, केवल तेरी समझ का ही अंतर है, रे मूढ केवल दया ही पालने से भव्य जीवों का संसार परित्त हो जाता है जैसे "ज्ञाताधर्म्म कथांग " सूत्र में वीतराग देव ने फरमाया है कि " मेघकुमार जी का गज भव, मे. शशक की दया पालने से ही संसार परित्त हो गया ' दंडी जी, उस वक्त गज भव में मेघकुमार जी के जीव को कुछ जिनाज्ञा का बोध नहीं था तथापि वीतराग ने यह स्पष्ट तया कहा है कि दया पालने मात्र से उन का संसार परित्त हो गया, अतएव यह श्रध्दान करो कि दया अवश्य मोक्ष दायिनी है, और रे देवानां प्रिय, दया है सो जिनाज्ञायुक्त ही है जिना-

ज्ञ अयुक्त तो दया हो ही नहीं सकती, और तुम दंडी जो यह कहते हो कि "अभव्य जीव अनंती वार तीन करण तीन योग से दया पालके भी इकीशमें देव लोक तक ही उत्पन्न होते हैं वह मिथ्या द्रष्टि क्यों रहते हैं." सो यह कहना भी तुम्हारा अज्ञ पने का है रे मुग्धो, दया तो अवश्य मोक्ष दायिनी ही है और सम्यक्त्व के सम्मुख करने वाली भी अवश्य है; परंतु अभव्य जीव तो मोक्ष के लिये दया पालता ही नहीं है यह उसके अभव्य पने का स्वभाव है, अभव्य जीव जो जो तीन करण तीन जोगों से दया पालता है सो केवल पौद्गलिक सुखों की ही वाछा से पालता है अतएव दया भगवती उस को वांछित फल प्रदान कर देती है. रे अक्ल के अजीर्ण वाले ओ, इस में दया की क्या अप्राधान्यता है? यदि कुछ कसर है तो दया पालनें वाले उस अभव्य जीव की ही है जो वह मूढ मोक्ष के अर्थ तनिक भी दया नहीं पालता है, केवल सांसारिक सुखों के ही अर्थ दया पालता है; और उसके मिथ्या दृष्टि रहने का भी यही कारण है कि वह मोक्ष के अर्थ दया नहीं पालता; और जमाली इस लिये निन्हव कहलाया कि उस ने तुम दंडी ओं की तरह से झूठ बोली, और तुम्हारे गुरु दंडी आनंद विजय जी ने "आज्ञा ही में धर्म है" ऐसा सिध्द करने के लिये

"सम्यक्त्व शल्यो द्धार" [प्रवेश] की पृष्ठ २५६ पंक्ति १३ मी से ऐसा लिखा है कि जेकर भगवंत की आज्ञा दया ही में है तो श्री आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कध के ईर्याध्ययन में लिखा है कि साधुग्रामानुग्राम विहार करता रस्ते में नदी आ जावे तब एक पग जल में और एक पग थल में करता हुवा उतरे सो पाठ यह है:-

भिक्खु गामाणुगामं दूइज्ज माणे अंतरा से नई आगच्छेज्ज एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा एवएहं-संतरइ ॥ यहां भगवंत ने हिंसा करने की आज्ञा क्यों दीनी !

दंडी जी यह लेख तुम्हारे गुरू दंडी आनंद विजय जी का नितांत मिथ्या है, क्योंकि नदी उतरने का पाठ जैसा तुम्हारे गुरु दंडी आनंद विजय जी ने लिखा है तैसा पाठ आचा रांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कध के ईर्याध्ययन में कहीं भी नहीं लिखा है, अत एव यह पाठ दंडी आनंद विजय जी ने मिथ्यात्व मोहिनीय कर्म के उदय से कल्पित लिख दिया है, रे बाबा वचन परमान करने वाले दंडी औ, तुम्हारे ही मतानुयायी राय धनपत सिंह बहादुर मकसूदा-बाद निवासी ने संवत् १६३६ में जो आचारांग सूत्र

छपवाया है तिस में भी उपर्युक्त पाठ नहीं है ?? यह मुक्त कंठ से कहा जाता है कि आप के पक्के गुरु दंडी आनन्द विजय जी इस समय उपस्थित होते तो विद्वनमण्डली में उनकी तर्क विद्या की अच्छी तरह जांच पड़ताल की जाती, क्योंकि अब जमाने में सच्चाई के ग्राहक है, आश्चर्य तो इस वात का है कि तुम्हारे गुरु दंडी आनंद विजय जी ने कल्पित पाठ वना के लिख देने में और गण धर रचित सिद्धांत की मिथ्या साक्षी देदेने मे भव भ्रमण का भी किंचित् भय नहीं किया ?? दंडी जी अब हम "आचारांग" सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध के तीसरे 'ईर्याख्य अध्ययन' का वह पाठ लिखते हैं कि जिस पाठ को परिवर्त्तन करके तुम्हारे गुरु दंडी आनंद विजय जी ने नवीन कल्पित पाठ वना के लिखा है देखो राय धनपत सिंह वहादुर के छपाये हुवे "आचागंग" सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध की पृष्ठ १४४ में जंघा संतारिम (जल में होके साधु आदि कैसे पार होवें) सो विधि पाठ ऐसा लिखा है:--

से भिक्खू वा भिक्खू णी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से जंघा संतारिमे उदए सिया से पुव्वामेव ससी सो वरियं कायं पादेय पमज्जेज्जा से पुव्वा मेव पमज्जित्ता

जाव एगं पादं जले किच्चा एगं पादं थले किच्चा तओ संजया मेव जंघा संतारि में उदगं अहारियं रिएज्जा,

अब कहिये दंडी जी, आचारांग सूत्र के उपर्युक्त मूल पाठ को आप के गुरु दंडी आनंद विजय जी ने किस प्रकार बदल सदल कर लिखा है ! और तुम्हारे जैसे " आँखों के अंधे, नाम नैन सुखो " को कैसा झाँसा दिया है ?? हमको बड़े खेद के साथ लिखना पड़ता है कि, सिद्धांत का एक अक्षर भी न्यूना धिक्य करने वाले अनंत संसार परि भ्रमण करते है, ऐसा जिनागमों में कहा है तो पाठ के पाठ को रदोबदल करने वाले तुम्हारे गुरु दंडी आनंद विजय जी की क्या ? दशा होगी, आश्चर्य नहीं कि वह इस समय अपने किये का फल पारहे होंय !!

हा: ! तुम्हारे गुरु दंडी आनंद विजय जी ने अपने घृणित मंतव्य को सिद्ध करने के लिये कुछ भी भय नहीं किया ! सिद्धांत में जो दया भगवती की सेवा करने के लिये विधिवाद का कथन है तिसको तुम्हारे गुरु जी ने हिंसा की आज्ञा बतलाय दीनी !

दंडी जी " आचारांग " जी सूत्र का यथा तथ्य पाठ जो हमने लिखा है उस में हिंसा करने की भगवदाज्ञा कहीं भी नहीं है, उस पाठ में तो भगवंत ने वह विधि

साध्वादि को बतलाई है कि जिस से जल काय आदि के जीवों की विशेष हिंसा नहीं होय, रे मुग्धो भगवंतो ने तो वहां भी दया ही पालने की आज्ञा दीनी है परंतु तुम दंडी ओं को तथा तुम्हारे दयालु ... जी को स्पष्ट दया की आज्ञा भी हिंसा की आज्ञा दीनी प्रतीत होती है सो तुम्हारे मिथ्यात्व का पूर्ण उदय है; रे दंभी दंडी ओ, यदि हिंसा करने की ही भगवदाज्ञा होती तो परिमाण से अधिक वार उतरने को भगवान "सबल" दोष क्यों बतलाते तथा "प्रश्नव्याकरण" सूत्रानुसार हिंसा और दया का स्वरूप भी हम भली भांति से जानते है; रे हिंसा धर्मी दंडी, हिंसा और दया का भेद तो तुंही नहीं जानता है कि जो तूं "प्रभावना अंग" का बहाना कर के नाटकादि क्रियों में अगणित त्रश तथा स्थावर जीवों की जान मान के हिंसा करता है, और अन्य भद्रक जीवों को बहिकायर करके उन्हों के पास से भी हिंसा करवाता है; परंतु दंडी यह याद रख कि जो शठ हिंसा धर्म की पुष्टि करता है और दया भगवती की उत्थापना करता है वह दया विहीन दुरात्मा जिस समय मृत्यु के मुख मे जायगा तब अपनी करनी पर अवश्य ही पछितायगा "पच्छा णुता वेण दया विहूणे" इति आगम वचनात् ॥

*　　*　　*　　*　　*

बाईस में छल छंद में दंडी तूँने लिखा है कि

मम्मा-मुनि श्रावक दो भेदे धर्म जिनेश्वर गाया है। सम्यग् दृष्टि सुर गण संघ चतुर्विध में फरमाया है। जिनके गुण गाने से पर भव धर्म सुलभ बतलाया है ॥

उत्तरः- दंडी जी तुम्हारा यह लेख सत्या सत्य रूप होने से समीचीन नहीं है; क्योंकि " ठाणांग " सूत्र के दूसरे ठाणे में भगवान ने चारित्र धर्म के दो भेद कहे हैं एक तो आगार चारित्र धर्म और दूसरा अनगार चारित्र धर्म, यथा;

चरित्तधम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा आगार चरित्तधम्मे चेव अणगार चरित्त धम्मे चेव,

इति वचनात्॥ दंडी जी, यह तो वीतराग का फरमाना सत्य ही है इसमें संदेह ही क्या है? परंतु सम्यग् दृष्टि- देवता चतुर्विध संघ में सम्मिलित हैं, ऐसा तो भगवंत ने किसी भी सिद्धांत में नहीं कहा है; और तूँ दंडी सम्यग् दृष्टि देवताओं को चतुर्विध संघ में बतलाता है सो नितांत सूत्र विरुद्ध प्ररूपणा करता है,

क्योंकि " स्थानांग " सूत्र के पंचम स्थान में पंच स्थानक कर के जीव दुर्लभ बोधि पने का कर्म बांधता है, ऐसा वीतराग ने कहा है तहां चतुर्थ स्थानक में तो संघ का गृहण किया है यथाः- **चाउ वण्णस्स संघस्स अवण्णं वय माणे ४ विवक्क तव बंभ चेरा णं देवा णं अवण्णं वयमाणे ५** अत्र दंडी जी वक्तव्य यह है कि, जो सम्यग् द्रष्टि सुर गणों की गिनती संघ में ही होती तो उपर्युक्त पाठ में पृथक बोल के कहने की क्या आवश्यकता थी? परंतु वीतराग ने संघ का बोल तो चौथा कहा और देवताओं का बोल पांचमा कहा इस से स्पष्ट सिद्ध है कि " सम्य क्त्वी देवता संघ में नहीं गिने जाते" और भवांतर के विषें पूर्ण रीति से तप ब्रह्मचर्य पालन किया है ऐसे देवताओं के वर्ण वाद करने से जीव सुलभ बोधि होता है इस कथन को हम भी सिद्धांतोक्त मानते हैं ??

* * * * *

तेईसवें छल छंद में दंडी तूंने लिखा है कि

यथ्या-यह है पाठ ठाणांगेःऔर भी यह फरमाया है। जो अवगुण बोले सुर गण का,

दुलर्भ बोधि कहाया है। अचरीज ऐसे पाठ देख कर जरा न मन में आया है।

उत्तरः—दंडी जी तुम्हारे इस लेख का उत्तर तुम्हारे बाईस में छल छंद के उत्तर से ही समझ लेना, दंडी जी महदाश्चर्य तो हम को इस बात का है कि, तुम को आश्चर्य किस बात पर हुवा है ! और इस "ठाणांग" के पाठ से रे हिंसा धर्म्मी दंडी, तेरे कौन से मंतव्य की सिद्धि होती है ? सो लिख कर प्रकट करैगा तो तिस का भी यथेष्ट उत्तर यथावकाश दिया जायगा ??

*   *   *   *   *

चउवीश में छल छंद में दंडी जी आप ने द्वेपानल से प्रज्वलित हो कर अपनी करणी का फल यह लिखा है कि

ररा—रो रो नहीं छूटेगा आप ही कर्म कमाया है। उन्मारग को मारग समझा यह कलियुग की माया है॥ प्रभु की पूजा त्याग करा के अपने आप पुजाया है।

उत्तरः--दंडी जी, जो जीव पाप कर्म कमावेगा उस को पाप कर्म का फल तो अवश्य ही भोगना पड़ेगा " कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थी " इति आगम वचनात्। परंतु रे दंडी, हमारी समझ से तो तूं ही रो २ के नहीं छूटेगा; क्योंकि तूं अठारह में पाप स्थानक की पोषणा करता है और धर्म के निमित्त षट् काय के जीवों की हिंसा करता है दूसरे से कराता है तथा करते हुवे को भला भी जानता है और " प्रश्न व्याकरण " सूत्र के प्रथम अधर्म द्वार में वीतराग ने प्रकट फरमाया है कि, " धम्मा हणंति " अर्थात् जो जीव धर्म के निमित्त षट् काय के जीवों की हिंसा करते हैं वह मंद बुद्धि (मिथ्यात्वी) है और उस हिंसा का यह परिणाम होगा कि वह अनंत संसार परि भ्रमण करेंगे; और दंडी जी, हमने उन्मार्ग को भी मार्ग नहीं समझा है हमने तो " उत्तराध्ययन " सूत्र के अष्टाविंशति में अध्ययन में हमारे वीर पिता ने जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप रूप मोक्ष का मार्ग बतलाया है उस को ही मोक्ष का मार्ग समझा है; रे दंडी उन्मार्ग को तो तूं ने ही मार्ग समझा है जो हिंसा युक्त प्रतिमा पूजन रूप उन्मार्ग को मोक्ष का मार्ग मानता है; तथा रे मृषावादी दंडी, प्रभु की पूजा

का त्याग तो हमने किसी को भी नहीं कराया है और न कराते है किन्तु सिद्धांतोक्त रीति से प्रभु की निरवद्य पूजा हम स्वयं भी करते हैं और अन्य भव्य जीवों को करने का सदुपदेश भी देते हैं परंतु रे मुग्ध दंडी, प्रभु का बहाना कर कर के जो शठ प्रतिमा [नकल] की हिंसात्मिका पूजा करते हैं उन को हम अवश्य मिथ्यात्वी मानते हैं; और हमारी [सनातन जैन साधुओं की] पूजा भक्ति को देख कर जो तू जलता है सो तेरे पाप कर्म का उदय है !!

* * * *

पच्चीशवें छल छंद में दंडी तूँ ने लिखा है कि

लक्षा-लक्ष द्रव्य से पूजा वीर प्रभु जब आया है। कल्प सूत्र का पाठ नज़र नहीं मूंढ ढुंढक पाया है॥ अज्ञानी ढुंढकने पर्युषण में कल्प हटाया है॥

उत्तरः--दंडी जी, तुम्हारा यह लेख नितांत मिथ्या है; क्योंकि " कल्प सूत्र " के मूल पाठ में ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है कि, जब वीर प्रभु आये तब अमुक ने लक्ष द्रव्य से पूजा करी, रे दंडी, वह पाठ यदि तेरी

ही नजर से गुजरा होवे तो तुही "कल्प सूत्र" में वह पाठ कोनसा है सो बतला ? अन्य था इस "दंडी दंभ दर्पण" में अनेक स्थल पर प्रकट पने तुझ को मृषा वादी सिद्ध किया है उन में एक स्थल यह भी है ! और रे अज्ञ दंडी, हम तो "कल्प सूत्र" के अविरुद्धांश को सर्वदा प्रामाणिक मानते ही हैं, विरुद्धांश को सो कोई भी आर्य विद्वान प्रामाणिक नहीं मान सकता: और पर्युषण में हम ने कल्प को स्थापित ही कब किया था जिस को हम हटाते ! रे अनभिज्ञ दंडी, वीर भगवान के निर्वाण से नवसे अरशी में वर्ष में 'आनंद पुर' के 'ध्रुव सेन राजा' को कारण वश यतिओं ने पर्युषण पर्व में 'कल्प सूत्र' सुनाया था वस तब ही से सभा के समक्ष में 'कल्प सूत्र" के वांचने की प्रवृत्ति हुई, यह वर्णन तुम्हारे ही मान्य "कल्प सूत्र" की टीका और भाष्य में लिखा है, यतः नव शत असीति वर्षे वीरात्सेनांगजार्थे सानंदे संघ समक्षं समहं प्रारब्धो वाचितुं विज्ञैः इति वचनात् ॥ दंडी जी हम ने तो "कल्प सूत्र" की न तो प्रवृत्ति की है और नाही निवृत्ति की है; परंतु यह हम अवश्य कहते हैं कि, संपूर्ण "कल्प सूत्र" अर्वाचीन काल का बना हुवा है और इसी लिये चतुर्थ कालविषें पर्युषण

पर्व में इस के वांचने की प्रवृत्ति नहीं थी तूँ पर्युषण में कल्प हटाने का आल हमारे शिर पर वृथा लगाता है सो तेरी धृष्ठता है !!

* * * * * *

छत्तीश में छल छंद में दंडी तूँ ने लिखा है कि

वत्वा—विधि काउसग्ग करने का आवश्यक दरसाया है दक्षिण हाथ मुह पत्ती रखनी वामें ओघा रखया है शास्त्र विरुद्ध अरे मूरख क्यों मुख पर पाटा लाया है

उत्तर:--दंडी जी! उक्त लेख तुम्हारे मुग्ध पने का बोधक है; क्योंकि दक्षिण हाथ में मुख वास्त्रिका तथा वामें हाथ में ओघा रख कर कायोत्सर्ग करना ऐसी विधि आवश्यक" सूत्र के मूल पाठ में कहीं भी नहीं लिखी है; और रे हिंसा धर्मी दंडी, हम शास्त्र से विरुद्ध नहीं किंतु स्व शास्त्र तथा पर शास्त्रों से मुख पर मुख वास्त्रिका बांधना निर्विवाद सिद्ध है अतएव मुख पर मुख वास्त्रिका बांधते हैं, रे मंगल दंडी, मुख पर मुख वास्त्रिका बांधना हम अनेक ग्रंथों के प्रमाणों से तेरे अष्टम छल छंद के खंडन में भली भांति सिद्ध कर चुके है, इसालिये पिष्ट

पेपण समझ कर यहां नहीं लिखा है तथा उपर्युक्त छंद के नोट में तूं ने लिखा है कि यदि यह श्री मद्भद्र बांहु स्वामी चतुर्दश पूर्व धारी कृत निर्युक्ति का पाठ मंजूर नहीं है तो जिस विधि से ढूंढिये का उत्सग्ग करते हैं तो विधि अपने माने शास्त्रों के मूल पाठ में दिखा देवें वरना पूर्वोक्त पाठ से ढुंढियों का मुख पर पाटा बांधना मनः कल्पित सिद्ध हो चुका है ?

उत्तरः--दंडी जी ' चतुर्दश पूर्व धारी श्री मद्भद्रबाहु स्वामि कृत यह निर्युक्ति है यह कथन सिद्धान्तोक्त न होने से हम तिस निर्युक्ति के अविरुद्धांश को प्रमाण मान सकते हैं परन्तु तेरी लिखी हुई कायोत्सर्ग की विधि को तो हम गप्प मानते हैं ऐसी गप्पों को तो तुम सरीखे गप्पी ही प्रमाण मान सकते हैं प्रेचा वान तो कोई भी नहीं मानेगा. अब दंडी जी हम [जैन सुसाधु] जिस विधि से कायोत्सर्ग करते हैं वह सूत्र पाठ तुम को लिख दिखाते है, देखो सूत्र का पाठ तस्सुत्तरी करणेणं पायच्छित्त करणेणं विसोही करणेणं विसल्ली करणेणं पावाणं

कस्माणं निग्घाय णट्ठाए ठामि काउस्सग्गो अण्णत्थ उसासिएणं निसासिएणं खासिएणं छीएणं जंभाइएणं उड्डुएणं वाय निसग्गेणं भमलिए पित्त मुच्छाए सुहुमेहिं अंग संचालेहिं सुहुमेहिं खल संचालेहिं सुहुमेहिं दिट्ठि सं चालेहिं एवमाइ एहं आगारेहिं अभग्गो अविराहिउ हुज्जमे काउस्सग्गो जाव अरिहंताणं भगवंताणं णमुक्कारेणं नपारेमि तावकायं वाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वो सिरामि

इस आवश्यक सूत्र के पाठा नुसार हम कायोत्सर्ग करते हैं, यह हमारे मान्य सूत्र का पाठ कायोत्सर्ग करणे की विधिका तुमको लिख दिखाया है अत एव तुम दंडीओं का हाथ में मुख पुंछना रखना मनःकल्पित सिद्ध हो चुका है ??

* * * * *

सत्ताईशवें छल छंद-में दंडी तूं ने लिखा है कि-

शश्श—शरमाता नहीं मूरख कैसा सांग वनाया है।

कांन नाक और गांड के पाटा कसकर क्यों न लगाया है ॥
एक को बांधा अनेक को छोड़ा क्या अज्ञान धराया है ।

उत्तरः--दंडी जी सत्ताइशवां छल छंद लिख करतो तुमने तुम्हारी नीच बुद्धि का पूर्ण परिचय दिखलाया है वाह दंडी जी शास्त्र विरुद्ध स्वांग [वेष] तो तुम धारण करो और शरमा में हम यह कहां का न्याय है जो मूढ शास्त्र विहित श्वेत मानोपपेत वस्त्रों को छोड़ कर शास्त्र विरुद्ध पति वस्त्रों को धारण करते हैं वो अज्ञानी मूढ श्वेताम्वर कहाते हुए शरमामेंगे, हम क्यों शरमाने लगे, तथा कांन नाक आदि के कस कर पाटा बांधन की निःप्रयोजन हमें कुछ आवश्यकता नहीं है यदि तेरे कांन नाक आदि में कोई विस्फोटक हो गया हो तो तूं तिस पर कस कर पाटा बांध सकता है तेरे गुरू आत्माराम जी ने सम्यक्त्व शल्योद्धार [प्रवेश] का पृष्ठ ५२ की तथा ५४ की में ऐसा सूत्र पाठ लिखा भी है कि-

से भिक्खु वा भिक्खुणी वा ऊसास माणेवा

निसास माणेवा कास माणेवा छीयमाणेवा जंभाय माणेवा उड्डुवाएवा वायणिसग्गे वा करेमाणे वा पुव्वामेव आसयंवा पोसयंवा पाणिणा परिपेहित्ता ततो संजयामेव ओसा सेज्जा जाव वाय णिसग्गवा करेज्जा

इस का भावार्थ यह है कि साधु अथवा साध्वी को उच्छ्वास निः श्वास लेते खांसी लेते, छींक लेते, उबासी लेते, डकार लेते हुए अथवा वातोत्सर्ग करते (पादते) हुए के पहिले मुख को और गुदा को हाथ से ढकलेना तिसके पिछे यत्ना से उच्छ्वासादिलेने तथा वातोत्सर्ग करना, सो ढूंढी तेरे गुरु के इस लेख के अनुसार तो तू उच्छ्वासादि लेते हुए मुख को तथा पादते वक्त गुदा को हाथ से ढकना तो हो होगा परंतु तू तेरे गुरुके कथन से और भी ज्यादा क्रिया करना चाहता है तो नाक, गांड के पाटा भी कसकर बांधले। और हमने न तो एक को बांधा है और न अनेक को छोड़ा है अतएव यह लिखना तेरा नितान्त मिथ्या है और जो तूने इस छलछंद के नोट में लिखा है कि:—

ढुंढियों का कहना है कि भाभ से जीव मरते हैं उनकी रक्षा के निमित्त पाटा बांधा जाता

है तो नाक वगैरह को भी बांधना चाहिये? भाफ तो वहां से भी निकलती है?

उत्तरः- रे हिंसा रत दंडी, तेरा यह लेख नितांत मिथ्याहै; क्योंकि सनातन जैन साधुतो कोईभी इस बात को नहीं कहते है कि 'मुख की स्वाभाविकी भाफ से जीव मरते हैं यह जिनागमों में कहा है और इसी लिये मुख पर मुख वस्त्रि का बांधते हैं" किंतु स्वसमयान भिज्ञ दंडी, तेरा यह लेख तो तेरे ही समान धर्म वालेओं पर संघटित होता है, देख तेरे ही शास्त्र विशारद जैना चार्य दंडी धर्म विजय जी तारीख २४ नवम्बर सन् १९१२ के जैनशासन की दूसरी पुस्तक के पंदरह मे अंक की ६ पृष्ठ में स्पष्ट तया यह लिखते है कि" मुखादि वा वध्यिन्ते पीयन्ते चोर गादिभिः" उक्त अंक की ही पृष्ठ ७ मी में आप ही गुर्जर भाषा में इसका भावार्थ लिखते है कि "मुख मां थी नीकलतां वायु वडे [से] पण वायु कायना जीवो पीडा पामे छे"

परंतु आश्चर्य इस बात का है कि 'मुख की वाफ से जीव मरना तो तुम्हारे शास्त्र विशारद जी मानते

है मगर रक्षा का प्रयास कुछ भी नहीं करते यदि रक्षा करना चाहते है। तो तुम्हारे जैना चार्य जी को चाहिये कि सदा काल मुख से मुख वास्त्रिका लगाये हुवे रहें। रे मृषावादी ढंडी. सुसाधु तो ऐसा कहते हैं कि, खुले मुख से बोलने से वायुकाय आदि जीवं की हिंसा होती है अत एव खुले मुख से बोलना सो सावद्य वचन है और इसी लिये (कभी प्रमादिक अवस्था में भी खुले मुख से कोई शब्द नहीं कहने मे आवे) मुख पर मुखवस्त्रिका को लगायें रहते है; सो सुसाधु ओं का कथन सर्वथा सत्य है क्यों कि 'भगवती' सूत्र के सोलह में शतक के दूसरे उद्देशे में गौतम स्वामि के पूछने पर स्पष्ट तया वीर भगवान ने यह फरमाया है कि खुले मुख से बोली हुई भाषा सावद्य होती है यथा सक्केणं भंते देवंदे देव राया किं सावज्जं भासं भासति ? अणवज्जं भासं भासति ?

अर्थः- गौतम स्वामि प्रश्न करते हैं कि, हे भगवान ! सक्रेंद्र देवेंद्र देव राजा सावद्य भाषा बोलता है अथवा अनवद्य भाषा बोलता है ?

गोयमा सावज्जंपि भासं भासति ! अण वज्जंपि भासं भासति !

अर्थः-परमात्मा उत्तर देते हैं कि, हे गौतम! सावद्य भी बोलता है और अनवद्य भी बोलता है!

से, के, णट्ठे णं भंते एवं वुच्चति? सावज्जंपि भासं भासति? अण वज्जंपि भासं भासति?

अर्थः- पुनः गणधर प्रश्न करते हैं कि, हे भगवान्! किस लिये ऐसा कहते हो कि "सावद्य और अनवद्य दोनों भाषा बोले?

जाहे णं सक्के देविंदे देव राया सुहुम काय अणिज्जूहित्ता णं भासं भासति! ताहे सक्के देविंदे देव राया सावज्जं भासं भासति!

अर्थः- वीर प्रभु उत्तर देते हैं कि, जिस समय शक्रेन्द्र मुख से सूक्ष्म काय [वस्त्र तथा कर आदि] लगा कर नहिं बोलता है अर्थात् खुले मुख से बोलता है तब तो सावद्य भाषा बोलता है! और

जाहे णं सक्के देविंदे देव राया सुहुम कायं णिज्जूहित्ता णं भासं भासति! ताहे सक्के

देविंदे देव राया अण वज्जं भासं भासति !

अर्थः- जब शक्रेंद्र मुख से सूच्म काय [वस्त्र तथा हाथ आदि] लगाकर अर्थात् मुख को ढांप कर बोले तब अनवद्य भाषा बोलता है ! बस दंडी जी वक्तव्य अब इतनाही है कि " खुले मुखसे बोलने में वायु कायादि जीवों की हिसा अवश्य होती है " यह कथन सनातन जैन साधु ओं का उपर्युक्त सूत्र के प्रमाणानुसार सर्वथा सत्य है, और उस हिंसा से बचने के लिये ही मुख पर मुख वस्त्रिका बांधना, यह जिनोक्त मर्यादा है; जो शठ मुख पर मुख वस्त्रिका नहीं बांधते वह उक्त हिंसा से कदापि नहीं बच सकते जैसे कि तुम्हारे ही तारीख ६ अगस्त सन् १९१३ के " जैन शासन " पुस्तक ३ के ७ में अंक की पृष्ठ ४८ में · विद्याधर ' जी लिखते हैं कि

बहुत से साधु लोग मुंह पत्ती का उपयोग न रख कर के मन में आता है उस तरह श्रावकों के साथ वार्ता लाप करते हैं, परंतु यदि आने वाला श्रावक मुंह के आगे कपडा रख कर के मुनि राज के सामने वार्ता

लाप करे, तो खुद मुनि राज को लज्जित हो कर मुह वत्ती का उपयोग रखना पडे ??

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

अट्ठाईशवें छल छंद में दंडी तूंने लिखा है कि-

षषूषा- षट अंग में द्रोपदी पूजा वर्णन आया है गर्दभ मिसरी ऊंट दाख सम कुमति मन नहीं भाया है शत्रु जय पुंडर गिरि ग्यःता पर मारथ नहीं पाया है

उत्तरः- यह जो तूंने लिखा है सो कुगुरु की कहानी सुन कर लिखा है यदि तूं गुरुगम्य से छट्ठे अंग की स्वाध्याय करता तो तुझे यह ज्ञात हो जाता कि द्रौपदी ने उद्वाह के समम किस देव की मूर्त्ति पूजी थी, हे भद्रक द्रौपदी ने विवाह के समय जिस प्रतिमा की पूजा की थी वह तीर्थ कर भगवान की नहीं संभवती कारण कि तिस प्रतिमा के पास मयूर पिछि आदि वह उपकरण थे जो यक्ष देवों की प्रतिमा के पास होने सूत्र में कहे हैं अत एव द्रौपदी ने जो प्रतिमा की पूजा की है सो तीर्थ कर

की प्रतिमा की पूजा नहीं की, तथा उद्वाह के समय द्रौपदी मिथ्यात्व युक्त थी क्योंकि तिसके पूर्व कृत निदान कर्म का उदय था "पुव्व कय णियाणेणं चोइ ज्जमाणी" इति आगम वचनात् निदान पूर्ण होने से पहिले सम्यक्त्व आना सिद्धान्त में कहीं कहा नहीं, और ज्ञाता धर्म कथांग में विवाह के प्रथम द्रौपदी के सम्यक्त्व आने का कोई पाठ भी नहीं है, यदि द्रौपदी को उद्वाह के पहिले सम्यक्त्व प्राप्त होगई मानते हो तो वह सूत्र पाठ ज्ञाता जी का प्रकट करो अन्यथा द्रौपदी का प्रतिमा पूजन रूप कर्त्तव्य मिथ्यात्व दशा का है अतएव सम्यक्त्वी आ को आदरणीय नहीं हो सकता, यदि कहोगे द्रौपदी का नियाणा मंद रसका था था इससे उसको नियाणा पूर्ण होने के पहिले ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होगई थी तो यह कथन भी तुमारा अज्ञ पने का है क्योंकि मंद रस का जिसका नियाणा होता है तिसको भी नियाणा पूर्ण होने पर ही सम्यक्त्वादि आते हैं परन्तु नियाणा पूरा हुये विना सम्यात्क्वादि आते नही अतएव पाणि ग्रहण के समय द्रौपदी मिथ्यात्व युक्त थी, तथा ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र के टीकाकार श्री मद भय देव जी के लेख से भी यही सिद्ध होता है कि ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र की प्राचीन वाचना मे नमोत्थुणं देने का पाठ नहीं था जिससे द्रौपदी को सम्यक्त्व युक्त समझी जाय ज्ञाता जी

सूत्र की प्राचीन वाचना मे (प्रति मे) केवल इतनाही पाठ था कि " **जिण पडि माणं अच्चणं करेइ** " देखो राय धनपति सिंह जी बहादुर का संवत् १९३३ का छपाया हुवा ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र की पृष्ट १२५५ की पंक्ति १ में श्री मद भय देव जी कहते हैं कि "**जिण पडिमाणं अच्चणं करेइत्ति एकस्यां वाचना या मेता वदेव दृश्यते** " इस कथन से स्पष्ट सिद्ध होता है कि वाचनान्तर के बहाने से सावद्या चार्यों ने ज्ञाता सूत्र के मूल पाठ मे विशेष पाठ अपने मन्तव्य को सिद्ध करने के लिये बढा दिया है सो तुझको विचार करना चाहिये, और गर्धभ को मिश्री तथा ऊंट को दाख जैसे नहीं भाती तैसे हिंसा धर्मी ओं के मन को सिद्धान्त के शुद्ध अर्थ नहीं भाते यह वार्त्ता निस्संदेह है, तथा ज्ञाता जी सूत्र मे शत्रुंजयादि पर्वतों का वर्णन आया है अरु तिनपे पांडवादि अनेक मुनियों ने अनशन व्रत धारण कर आत्म कल्याण किया है यह तो हम मानते हैं परंतु ज्ञाता धर्म कथांग में ऐसा तो कहीं भी नहीं लिखा है कि शत्रुंजयादि अर्वतों की यात्रा करना अरु तहां जाके अमित जीवों की हिंसा करके प्रतिमा पूजन करना श्रावका चार है, यदि तुझ दंडी ने ज्ञाता सूत्र के कोई पाठ का विशेष परमार्थ पायाहो

तो तूंही मटक कर किस पाठ का यह परमार्थ है कि शत्रुंज-यादि की यात्रा करनी चाहियै ??

* * * * * *

उनतीशवें छल छंद में ढंडी तूंने लिखा है कि:-

सस्सा-संघ प्रभु दर्शन का कुमति त्याग करा-या है, अपने दर्शन खातर सेवक गणको नियम फसाया है, कौशिक सम कुमति घट अंदर घोर अंधेरा छाया है ॥

उत्तर:- यह लेख तेरा नितान्त मिथ्या है क्योंकि जैन सुसाधु प्रभुके दर्शनों का त्याग किसी को भी नहीं कराते हैं परंतु प्रभु की प्रति कृति को ही जो प्रभु मान के पूजनादि करते हैं तिनको अज्ञ अवश्य मानते हैं, तथा किसी भी श्रावक को हमने अपने दर्शन करणे का नियम नहीं करा-या है, और उल्लूक के समान रे मंगल ढंडी तेरे हृदय में हीं घोर अंधकार छारहा है जो तूं जैन सुसाधु ओं पे मिथ्या आक्षेप करता है ??

* * * * *

तीशवें छल छंद में दंडी तूंने लिखा है कि:-

हहा-हया नहीं माधव तुझको निर्लज निपट कहाया है, पक्ष पात वश होकर खींचा तानी चित्त लाया है। दोप नहीं इसमें हमारा तैं निज करणी फल पाया है, सीख मान सद्गुरु की माधव विरथा जन्म गमाया है ॥

उत्तर:- अंतिम छल छंद लिखकर तो तूंने अपनी लियाकित जाहिर की है अस्तु हम अप शब्दों का उत्तर अपशब्दों से देना नीच युद्ध समझते है अतः क्रम से उत्तर नही देते हैं परंतु इतना उत्तर देना उचित समझते हैं कि सुसाधु वेहया के कहे का बुरा नहीं मानते हैं क्योंकि वेहया तो सुसाधु ओं को आक्रोप परिसह दिया ही करते है, हमें आश्चर्य तो इस बात का है कि सद्गुरु का शिक्षा मान वृथा जन्म कैसे गमाया जाता है जो तूंने त्रिंशिका के प्रत्येक के छल छंद के चतुर्थ चरण में कहा है, रे मंगल अज्ञ जो भव्य सद्गुरु की शिक्षा मानता है वह कभी अपने जन्म को व्रथा नहीं गमाता है अरु जो मूढ अपने नर जन्म को वृथा गमाता है वह सद्गुरु की शिक्षा कभी नहीं मानता है अतएव "सीख मान सद्गुरु की माधव विरथा जन्म गमा-

या है" यह कथन तेरा स्ववचन विरोध दूषण से दूषित है, अतएव निंदनीय है, अब हम यह लिख कर अपनी लेखनी को विश्राम देते हैं कि शास नेश वीर प्रभु हमारे लेख द्वारा तेरा मिथ्यात्व दूर कर तुझे सम्यक्त्व प्रदान करैं !! आग्रंथमां मंगल सिंह ढूंढी ने उद्देशी ने वल्लभ विजय जी अमर विजय जी ने पण यथा साध्य सुष्टु शब्दोंमा हित शिक्षा आपवामां आवीछे तेमां वीतरागना वचनों थी विरुद्ध लख वामां आव्यूं होय एवूं तो संभव तो न थी तो पण कोई लखाण प्रमाद वस तथा दृष्टि दोष थी जिनोक्त सिद्धान्तों थी विरुद्ध लखाई गयूं होय ते माटे केवली नी साक्षी ऐ शुद्धान्त करण थी मिच्छामि दुक्कडं देऊं छूं और यह आशा राखूं छुं कि

कुछभी तूने अगर दिया है इन बातों पर ध्यान
अल्प कालमें हो जावेगा तो सूजान सज्ञा न ॥
रे जड़मति के कोश नहीं तो इस दुनियांके बीच
तन अपना अनमोल गँवाया रहा नी.. का नी..॥

शान्तिः १ शान्तिः १ शान्तिः १

आर जी. बन्सल एन्ड कम्पनी २३६, कसेरट बाजार
आगरा के यंत्रालय में छप कर प्रकाशित हुई